खण्ड III

खण्ड III

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य

समकालीन समाज के विभिन्न सामाजिक व्यवस्था चाहे वह उदारवादी हो, पूँजीवादी हो या समाजवादी इत्यादि के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संस्थाओं के विश्लेषण के बाद कह सकते है, कि राज्य राजनीतिक रूप से सबसे शक्तिशाली संस्था है। वास्तव में, यह कहने में हमे कोई अतिश्योक्ति नही है कि हमारा जीवन राज्य कि सीमाओं और अधिकार क्षेत्र के अंदर शुरू होता है और समाप्त भी। हमारे जीवन में अन्य संस्थाओं की अपेक्षा "राज्य" सबसे ज्यादा प्रभाव डालता है। पंरपरागत दृष्टिकोण के जनक अरस्तू, जो ग्रीक में रहते थे, ने कहा है कि मनुष्य जो बिना राज्य के रह सकता है वो या तो पशु है अथवा देवता।

सार्वजनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में "राज्य" एक केंद्रिय विषय है। तुलनात्मक राजनीति और राजनीतिक सिद्धांत के दृष्टिकोण में "राज्य" गहन डिबेट का विषय है। इस खंड में, "राज्य" का अध्ययन मुख्य रूप से दो सिद्धांत उदारवादी और मार्क्सवादी

हम लोग राज्य के उत्पत्ति के संबंध में पश्चिमी यूरोप का विश्लेषण करेंगे। इस खंड में लोग लोकतांत्रिकरण राज को समझना महत्वपूर्ण केंन्द्र बिंदु है। इस खंड के प्रथम अध्याय में इस तथ्य का विश्लेषण करेंगे के आधुनिक राज्य की उत्पत्ति और वर्तमान स्वरूप किस प्रकार निरंकुशवादी राजतंत्र से निकल कर उदारवादी प्रतिनिधित्व लोकतंत्र के रूप में स्थापित हुआ है। यह अध्याय दीर्घकालिक प्रक्रियाओं पर भी ध्यान आकर्षित करेगा।

आधुनिक राज्य की उत्पत्ति और प्रकृति का अनुभव खासकर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिकी देशों का अन्य देशों से अलग है। ये देश कुछ दशक पूर्व ही सार्वभौमिक राष्ट्र बने है। औपनिवेशिक शासन के अधीन होने के कारण यहाँ के लोगों ने विभिन्न चुनौतियों का सामना किया है। इस खंड के दूसरे अध्याय में उन देशों के सामाजिक और राजनीतिक विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। यह अध्याय उत्तर औपनिवेशिक के प्रकृति, समाजिकता वर्ग विभाजन और सापेक्ष स्वायत्तता पर भी चर्चा करेंगे। पिछले कुछ दशकों में "राज्य" कई नई चुनौतियों का सामना कर रहें। इन चुनौतियों को दो प्रकार से परिभाषित कर सकते है –एक बाह्य और दूसरा आंतरिक बाह्य चुनौतियों में खासकर "राज्य" को छोड़कर अन्य प्रभावशाली ताकते (Non-State Actors) विश्व राजनीति को प्रभावित राजनीति को प्रभावित कर रहे है। आंतरिक चुनौतियों में खासकर विभिन्न समुहों जिनके पास किसी परिवर्तन को लाने या प्रसारित करने की प्रर्याप्त शक्ति है, जो अपनी मूल पहचान के लिए संघर्ष कर रहे है, उनका मानना है – आधुनिकीकरण (Modernization) की प्रक्रिया और धर्म निरपेक्षीकरण उनकी अपनी मूल पहचान को चुनौती दे रहा है, इसके आने से उनकी मूल पहचान को लेकर खतरा महसूस कर रहे है। ऐसे जातीय समूहों के अपने स्वायत्ता के लिए संघर्ष या दावा किसी राज्य में एकता अखंडता के लिए खतरा बन सकता है। आंतरिक चुनौतियों में एक विषमतावद (Heterognity) के सामाधान के लिए "राज्य" राष्ट्रनिर्माण में बहुतावाद पर जोर दे रहे है। जबकि बाह्य चुनौतियाँ विश्व राजनीति में परिवर्तन के कारण राज्य में "सार्वभौमिकता" को चुनौती दे रहे है।

इकाई–8 पश्चिमी यूरोप में राज्य का विकास*

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 राज्य की विशेषताएं

8.3 मध्यकालीन यूरोप में खंडित राजनीतिक व्यवस्था

8.4 आधुनिक राष्ट्र राज्यों की प्रारंभिक नींव

8.5 आधुनिक राज्य और संप्रभुता का उदय

8.5.1 राज्य की संप्रभुता

8.5.2 लोकप्रिय संप्रभुता

8.6 आधुनिक राष्ट्र राज्यों का औपचारीकरण और लोकतंत्र का उदय

8.7 सारांश

8.8 संदर्भ

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पश्चिमी यूरोप में आधुनिक राष्ट्र राज्य प्रणाली के विकास का परिचय देना है। इसका अध्ययन करने के बाद, आप इस योग्य हो जाएंगेः

- आधुनिक राज्य की विशेषताओं को पहचानें
- यूरोप में राज्य के गठन का संदर्भ दें
- आधुनिक राज्य की नींव का वर्णन करें
- संप्रभुता के महत्व का वर्णन करें
- एक निरंकुश राज्य से एक उदार लोकतंत्र के रूप में राज्य के विकास की व्याख्या करें।

* डॉ. गजाला फरीदी, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान संकाय, साउथफील्ड कॉलेज, दार्जीलिंग, पश्चिम बंगाल

8.1 परिचय

विभिन्न प्रकार के सामाजिक–राजनीतिक समुदाय पूरे इतिहास में अलग–अलग समय और स्थानों पर उभरे हैं। इनमें जनजाति समूह, कृषि समुदाय, खानाबदोश समूह, साम्राज्य, राज्य, जागीरदार शहर और अन्य शामिल हैं। इनमें से कुछ संगठन केंद्रीकृत और शक्तिशाली हो गए हैं जबकि अन्य शिथिल रूप से संगठित या विकेंद्रीकृत हो गए हैं। एक राजनीतिक समुदाय के रूप में आधुनिक राष्ट्र राज्य मानव संस्थाओं के नवीनतम रूपों में से एक है। गठन की एक लंबी खींची और असमान प्रक्रिया के बाद, राज्य प्रणाली अंततः सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप में स्थापित हो गई थी। राज्य स्वयं राजतंत्रीय रूपों के तहत निरंकुश साम्राज्यवादी रूप से उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र के रूप में विकसित हुए। यूरोप से, यह राज्य व्यवस्था मुख्य रूप से उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के माध्यम से शेष विश्व में फैल गई। बीसवीं शताब्दी में अफ्रीका और एशिया में उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने दुनिया में आधुनिक राज्यों की संख्या में और वृद्धि की। यह संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के नाटकीय उदय में परिलक्षित होता है– 1945 में प्रारंभिक 51 सदस्य राज्यों से वर्ष 2020 में 193 तक। हम इस इकाई की शुरुआत आधुनिक राज्य की मुख्य विशेषताओं की पहचान करके करते हैं और फिर पश्चिमी यूरोप में आधुनिक राज्य के विकास को चित्रित करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

8.2 राज्य की विशेषताएं

"राज्य– या 'सरकार' का तंत्र– हर जगह प्रतीत होता है, हमारे जीवन की स्थितियों को जन्म पंजीकरण से लेकर मृत्यु प्रमाणीकरण तक नियंत्रित करता है।" (हेल्ड़ के जन्म और मृत्यु के बीच, हम कई अवसरों पर राज्य की प्रक्रियाओं से बंधे होते हैं। बहुत से लोगों को सरकारी स्कूलों और कॉलेजों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है, बीमार होने पर सरकारी अस्पतालों में स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जाती हैं और यदि आवश्यक हो तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आवश्यक खाद्य आपूर्ति की जाती है। एक बार जब कोई किसी देश का नागरिक होता है, तो वह उस राज्य के नियमों और विनियमों से बाध्य होता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र और हमारे व्यक्तिगत क्षेत्र के कुछ पहलुओं में हमारे आचरण दोनों के लिए सही है। दूसरे राज्य की यात्रा करने के लिए पासपोर्ट और वीजा देना होता है। हमारे मौलिक और मानवाधिकारों की गारंटी राज्य के संविधान द्वारा दी गई है और इसे इसकी संस्थाओं द्वारा लागू किया जाना चाहिए। ये उदाहरण हमारे जीवन में राज्य की व्यापकता और सर्वव्यापीता को दर्शाते हैं (दास 2008:171)।

एक राज्य में चार विशेषताएं होनी चाहिएः पहला, एक स्थायी जनसंख्या; दूसरा, एक परिभाषित क्षेत्र; तीसरा, सरकार और चौथा, अन्य राज्यों के साथ संबंधों में प्रवेश करने की क्षमता (संप्रभुता)। इन विशेषताओं को 1933 में हस्ताक्षरित 'मोटेंविडियो कन्वेशन ऑन द राईट्स एंड ड्यूटीज ऑफ स्टेट' में निर्धारित किया गया था। हालांकि इस सम्मेलन को विशेष रूप से उत्तर और दक्षिण अमेरिका से संबंधित देशों के बीच हस्ताक्षरित किया गया था, इस सम्मेलन को 'प्रथागत अंतरराष्ट्रीय कानून' का हिस्सा माना जाता है। . इसका मतलब यह है कि इस सम्मेलन में निर्धारित मानदंड और सिद्धांत न केवल हस्ताक्षरकर्ताओं पर लागू होते हैं बल्कि अंतरराष्ट्रीय कानून के अन्य सभी समान विषयों पर भी लागू होते हैं।

8.3 मध्यकालीन यूरोप में खंडित राजनीतिक व्यवस्था

आधुनिक राज्य व्यवस्था की शुरुआत उस भौगोलिक क्षेत्र में होती है जिसे हम यूरोप के नाम से जानते हैं। डेविड हेल्ड (1989:31) के अनुसार, "आधुनिक राज्य के गठन की कहानी आंशिक रूप से यूरोप के गठन की कहानी है, और यूरोप गठन की कहानी आधुनिक राज्य गठन की कहानी है।" यूरोप से यह व्यवस्था उपनिवेशवाद के माध्यम से शेष विश्व में फैल गई। हे और लिस्टर (2006 : 5) के अनुसार, "अगर हमें आधुनिक राज्य की उत्पत्ति स्थापित करनी है तो हमें पश्चिमी यूरोप की ओर मुड़ना होगा"। इसी तरह, थॉमस एर्टमैन (2005 : 367) भी लिखते हैं कि "हालांकि व्यापक अर्थों में राज्य निर्माण का पहला उदाहरण प्राचीन निकट पूर्व और चीन में चार हजार साल पहले हुआ होगा, यह पश्चिमी यूरोप में रोमन साम्राज्य के बाद की राज्य निर्माण प्रक्रिया थी, जो यूरोप, लगभग पाँचवीं शताब्दी से नेपोलियन काल के अंत तक, जिसने आधुनिक राज्य को अपने दिल में एक आधुनिक नौकरशाही बुनियादी ढांचे के साथ स्थापित किया।"

इस बात को रेखांकित करने की आवश्यकता है कि यूरोप स्वयं कई कारकों के संयोजन के माध्यम से बनाया गया था। "एक हजार साल पहले यूरोप इस तरह मौजूद नहीं था। मिलेनियम से एक दशक पहले, (990, ईस्वी) यूरेशियन भूमि के पश्चिमी छोर पर रहने वाले लगभग तीस मिलियन लोगों के पास इतिहास और भाग्य से जुड़े लोगों के एक समूह के रूप में खुद को सोचने का कोई अनिवार्य कारण नहीं था" (टिली, 1990:38)। न तो कोई सामान्य पहचान थी और न ही कोई एकीकृत प्राधिकरण। इस तरह संप्रभुता खंडित और विभाजित थी। "(विभिन्न) सम्राट, राजा, मूल्य, ड्यूक, खलीफा, सुल्तान, और 990 ईस्वी के अन्य शक्तिशाली विजेता, शुल्क लेने वाले और किराएदार के रूप में प्रबल थे, न कि राज्य के प्रमुखों के रूप में जो अपने दायरे में जीवन को टिकाऊ और घनी रूप से नियंत्रित करते थे" (टिली 1990:39)। इसलिए कई रियासतें और शहर राज्य थे। उनके बीच सत्ता के लिए एक निरंतर संघर्ष था क्योंकि वहां अतिव्यापी अधिकार क्षेत्र थे। निजी सेनाओं द्वारा बार–बार हिंसा का प्रयोग किया जाता था। यूरोप में कहीं भी कोई केंद्रीकृत राष्ट्रीय राज्य नहीं था (टिली 1990: 40)। यद्यपि अधिकांश इतालवी प्रायद्वीप पर बीजान्टिन सम्राट और पवित्र रोमन सम्राट द्वारा दावा किया गया था, इतालवी प्रायद्वीप के अंदर हर शहर वास्तव में अपने स्थानीय राजनीतिक एजेंटों द्वारा शासित था। इसलिए सन् 1200 में, अकेले इतालवी प्रायद्वीप ने दो या तीन सौ अलग–अलग शहर–राज्यों की मेजबानी की (टिली, 1990 : 40)।

आठवीं और चौदहवीं शताब्दी के बीच, यूरोप के भूभाग पर विभाजित/खंडित सत्ता का प्रभुत्व था और इस युग को 'सामंतवाद' (हेल्ड 1989: 32) के रूप में जाना जाता है। उस समय की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी। चूंकि कोई केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति नहीं थी, कृषि के माध्यम से जो भी अधिशेष उत्पन्न होता था, उसे लेने के लिए एक निरंतर लड़ाई हुआ करती थी (हेल्ड 1989:33)। इस युग में कई शहरी केंद्रों का उदय भी हुआ जिसने अधिक से अधिक विनिर्माण और व्यापार को जन्म दिया। ऐसे शहरी केंद्रों के उदाहरण फ्लोरेंस, वेनिस और सिएना थे। भले ही ऐसे सैकड़ों छोटे शहरी शहर पूरे यूरोप में विकसित हुए, फिर भी राजनीतिक शक्ति खंडित रही और पूरे ग्रामीण इलाकों में फैले स्थानीय शक्ति केंद्रों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया (हेल्ड 1989:33)। कुछ मात्रा में एकता पोपसी (रोम के बिशप, पोप के कार्यालय और अधिकार क्षेत्र) और पवित्र रोमन साम्राज्य

द्वारा धर्म के आधार पर एकता के लिए अपने व्यापक आह्वान के साथ प्रदान की जाने लगी। "पवित्र रोमन साम्राज्य आठवीं से उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक किसी न किसी रूप में मौजूद था। अपने चरम पर, यह कैथोलिक चर्च के संरक्षण के तहत, पश्चिमी ईसाई जगत के खंडित शक्ति केंद्रों को एक राजनीतिक रूप से एकीकृत ईसाई साम्राज्य में एकजुट करने और केंद्रीकृत करने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करता था" (हेल्ड 1989:33)। इसके अंतर्गत आने वाले क्षेत्र आज के जर्मनी से स्पेन और उत्तरी फ्रांस से इटली तक स्थित होंगे। इस तरह की व्यवस्था को हेडली बुल (1977) और पॉल कैनेडी (1988) ने 'अंतर्राष्ट्रीय ईसाई समाज' (हेल्ड 1989:33) करार दिया है। हालांकि, पूरे मध्य युग में कैथोलिक चर्च और ग्रामीण भीतरी इलाकों में स्थानीय स्तर के सामंती शक्ति केंद्रों और कई शहर राज्यों के बीच सत्ता के लिए एक निरंतर संघर्ष था (हेल्ड़, 1989 : 33)।

बोध प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की युक्तियों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) आधुनिक राज्य की चार विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मध्यकालीन यूरोप को खंडित क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 आधुनिक राष्ट्र राज्यों की प्रारंभिक नींव

इस 'अंतर्राष्ट्रीय ईसाई समाज' के लिए चुनौती जो यूरोप में राजनीतिक सत्ता की खंडित प्रकृति को एक व्यापक एकता प्रदान करने की कोशिश कर रही थी, सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में सुधार के रूप में आई। इसे प्रोटेस्टेंट सुधार के रूप में भी जाना जाता है, इस आंदोलन ने पोप और कैथोलिक चर्च की धार्मिक शक्ति को चुनौती दी। इसके मुख्य नेताओं में से एक मार्टिन लूथर थे, जिन्होंने वर्ष 1517 में नाइन्टी फाईव थीसीस नामक एक सूची के प्रकाशन के साथ चर्च की अपमानजनक प्रथाओं को उजागर किया। इन भेदभावपूर्ण प्रथाओं में लोगों को उनके पापों और अपराधबोध से छुटकारा दिलाने का वादा करने वाले लोगों को भोग बेचना या उनका व्यावसायीकरण करना शामिल था। सुधार द्वारा पेश की गई चुनौती के कारण, पोप की धार्मिक शक्ति और राजनीतिक पकड़ बहुत कम हो गई थी। इसने सीधे तौर पर राजनीतिक सत्ता के नए रूपों के उदय के लिए जगह का

विकास किया। इसके साथ, "राजनीतिक पहचान के एक नए रूप–राष्ट्रीय पहचान के विकास के लिए जमीन तैयार की गई" (हेल्ड 1989:34)। इसे आधुनिक राष्ट्र राज्य के उदय की प्रथम अवस्था कहा जा सकता है।

यूरोप में पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक राजनीतिक शासन के दो अलग–अलग रूप विकसित होने लगे। ये "फ्रांस, प्रशिया, ऑस्ट्रिया, स्पेन और रूस में 'पूर्ण' राजतंत्र थे, और इंग्लैंड और हॉलैंड में पाए जाने वाले 'संवैधानिक' राजतंत्र और गणराज्य" (हेल्ड 1989:34)। निरंकुशता का मूल रूप से मतलब एक सर्वशक्तिमान बड़े राज्य का विकास था जो छोटे और कमजोर क्षेत्रों को अपने बड़े संरचनात्मक दायरे में समाहित या अवशोषित करके बनाया गया था। इसने सुनिश्चित किया कि कानून और व्यवस्था की एक समान प्रणाली के साथ एक बड़ा एकीकृत क्षेत्र था। इसका नेतृत्व एक एकात्मक संप्रभु प्रमुख द्वारा किया जाना था जिसे निरंकुश सम्राट के रूप में जाना जाने लगा (हेल्ड 1989:35)। इसलिए राजनीतिक सत्ता 'राजा के दैवीय अधिकार' के सिद्धांत के आधार पर सम्राट में पूरी तरह से केंद्रीकृत हो गई। इसका मतलब यह है कि सम्राट/राजा की निरंकुश शक्तियों को इस आधार पर उचित ठहराया गया था कि उन्होंने अपनी शक्ति सीधे भगवान से ली थी और इसलिए इस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता था।

सम्राट की बढ़ी हुई शक्ति ने एक स्थायी नौकरशाही और एक सेना को शामिल करते हुए एक नई केंद्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली का विकास किया। इसलिए सम्राट के निरंकुशवाद ने पूरे क्षेत्र में प्रशासन, कानून और व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाज/संस्कृति के संदर्भ में एकरूपता की प्रक्रिया को जन्म दिया। इसलिए, इन क्षेत्रों के भीतर, इस तरह की विविधताएं कम हो रही थीं, लेकिन साथ ही, विभिन्न राजाओं द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों के बीच ये भिन्नताएं/अंतर बढ़ रहे थे। डेविड हेल्ड (1989:36) लिखते हैं कि "राज्य प्रणाली के इतिहास में छह आगामी घटनाक्रम बहुत महत्वपूर्ण थेः

(1) एक समान शासन प्रणाली के साथ क्षेत्रीय सीमाओं का बढ़ता संयोग;

(2) कानून बनाने और लागू करने के नए तंत्र का निर्माण;

(3) प्रशासनिक शक्ति का केंद्रीकरण;

(4) राजकोषीय प्रबंधन का परिवर्तन और विस्तार;

(5) कूटनीति और राजनयिक संस्थानों के विकास के माध्यम से राज्यों के बीच संबंधों की औपचारिकता; तथा

(6) एक स्थायी सेना की शुरूआत"।

इसलिए, पूर्ण राजशाही का गठन पश्चिमी यूरोप में राज्य प्रणाली के आगे विकास का आधार बन गया। अपने क्षेत्र में सम्राट की शक्ति को मजबूत करने के लिए लड़े गए अनगिनत युद्धों ने अंततः कई बार यूरोप के नक्शे को फिर से तैयार किया। हालांकि, इसने सुनिश्चित किया कि क्षेत्रीय समेकन एक प्रमुख मकसद बन गया, जिससे विभिन्न राजाओं के बीच संप्रभुता के सिद्धांत की स्थापना हुई। इसलिए "निरंकुशवाद और इसके द्वारा शुरू की गई अंतर–राज्य प्रणाली आधुनिक राज्य के निकटतम स्रोत थे" (हेल्ड 1989:36)।

8.5 आधुनिक राज्य और संप्रभुता का उदय

यूरोप में आधुनिक राज्य के गठन से पहले, आम लोग स्थानीय शासक, चर्च, सम्राट या अन्य धार्मिक/राजनीतिक प्रमुख के प्रति अपनी राजनीतिक निष्ठा रखते थे। लगातार संघर्ष के कारण इन दलों के बीच सत्ता के बदलाव के आधार पर, लोगों की राजनीतिक निष्ठा भी उसी के अनुसार बदल गई। आधुनिक राज्य की धारणा को जन्म देने के लिए आम लोगों और धार्मिक/राजनीतिक शासक के बीच इस जटिल संबंध को तोड़ना पड़ा। इसका कारण यह है कि आधुनिक राज्य की नींव एक अवैयक्तिक राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा पर आधारित है। अवैयक्तिक अर्थ किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित नहीं है। अधिकार के संदर्भ में, एक व्यक्तिगत आदेश की तुलना में एक अवैयक्तिक आदेश को उचित माना जाता है क्योंकि व्यक्तिगत आदेश में पक्षपात या भाई–भतीजावाद अधिक प्रचलित होने की संभावना है। "इसी तरह, यह केवल तब था जब मनुष्य को केवल भगवान, एक राजा या एक सम्राट के कर्तव्यपरायण विषयों के रूप में नहीं माना जाएगा, तब ही यह धारणा शुरू हो सकती है कि वे 'व्यक्तियों', या 'लोगों' के रूप में। एक नई राजनीतिक व्यवस्था के सक्रिय नागरिक होने में सक्षम थे– अपने राज्य के नागरिक" (हेल्ड 1989:37)।

आधुनिक राज्य संप्रभुता की अवधारणा से गहराई से जुड़ा हुआ है। संप्रभुता का अर्थ मूल रूप से एक राज्य व्यवस्था पर सर्वोच्च वैध शक्ति/प्राधिकार है। संप्रभुता की अवधारणा मुख्य रूप से सोलहवीं शताब्दी में राजनीतिक विचार के एक प्रमुख विषय के रूप में विकसित हुई (हेल्ड, 1989:38)। इस अवधारणा से जुड़े प्रमुख दार्शनिक जीन बोडिन, थॉमस हॉब्स, जीन–जैक्स रूसो और जॉन लॉक हैं।

8.5.1 राज्य संप्रभुता

कहा जाता है कि जीन बोडिन ने "संप्रभुता के आधुनिक सिद्धांत का पहला बयान प्रदान किया हैः कि प्रत्येक राजनीतिक समुदाय या राज्य के भीतर एक निश्चित संप्रभु निकाय होना चाहिए, जिसकी शक्तियों को समुदाय द्वारा अधिकार के सही या वैध आधार के रूप में मान्यता दी जाती है" (हेल्ड 1989:39)। बोडिन ने 1576 में फ्रांस में धार्मिक और गृहयुद्धों की पृष्ठभूमि में सिक्स बुक्स ऑफ द रिपब्लिक शीर्षक से अपना ग्रंथ प्रकाशित किया। उन्होंने व्यवस्था और स्थिरता लाने के लिए एक पूर्ण सम्राट के रूप में एक सर्वोच्च शक्ति/केंद्रीय प्राधिकरण की स्थापना के लिए तर्क दिया। इससे भी महत्वपूर्ण बात, बोडिन ने रेखांकित किया कि संप्रभु के पास अपनी प्रजा की सहमति की परवाह किए बिना उन पर कानून लागू करने की अविभाजित शक्ति है। बोडिन के लिए, कानून "अपनी संप्रभु शक्ति के प्रयोग में संप्रभु के आदेश के अलावा और कुछ नहीं था" (हेल्ड 1989:40)। इसलिए उनके संप्रभुता के सिद्धांत ने स्पष्ट रूप से प्रजा की सहमति से अधिक संप्रभु को पूर्ण शक्तियाँ दीं। हालाँकि, उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि संप्रभु की इस शक्ति का प्रयोग दैवीय कानून और राजनीतिक समुदाय के मौलिक प्रथागत कानूनों के आधार पर कुछ नियमों को ध्यान में रखते हुए किया जाना था। संप्रभुता असीमित हो सकती है, लेकिन संप्रभु नैतिकता और धर्म में भगवान, प्रकृति और रीति–रिवाजों के नियमों का सम्मान करने के लिए बाध्य है (हेल्ड 1989: 40)। अनिवार्य रूप से, उनका विचार था कि "जबकि संप्रभु राज्य का जायज मुखिया होता है, वह अपने पद के आधार पर ऐसा होता है न कि अपने व्यक्तित्व के आधार पर।" बोडिन ने रेखांकित किया कि संप्रभुता राज्य की

एक संवैधानिक विशेषता है और उनकी स्पष्ट प्राथमिकता सरकार के राजशाही स्वरूप के लिए थी।

थॉमस हॉब्स ने लेवियाथन (1651) नामक अपनी पुस्तक में राज्य संप्रभुता की धारणा को और मजबूत किया। उन्होंने 'सामाजिक अनुबंध' सिद्धांत का उपयोग करके ऐसा किया, जो यह मानता है कि लोगों ने अपनी कुछ शक्तियों को छोड़ने के लिए सहमति दी है (या तो स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से), सुरक्षा और स्थिरता के प्रावधान के बदले में एक शासक को यह शक्ति दी है। हॉब्स ने 'प्रकृति की स्थिति' की एक काल्पनिक स्थिति का तर्क दिया, जो एक राज्य/सरकार के अस्तित्व से पहले की स्थिति है। हॉब्स के अनुसार, ऐसी स्थिति जिसके परिणामस्वरूप 'हर एक के खिलाफ हर एक का युद्ध' हुआ और इसलिए हर व्यक्ति का जीवन 'एकान्त, गरीब, बुरा, क्रूर और छोटा' हो गया। ऐसी युद्ध की स्थिति से बचने के लिए, हॉब्स ने कहा कि "व्यक्तियों को स्वेच्छा से स्व–सरकार के अपने अधिकारों को एक शक्तिशाली एकल प्राधिकरण को सौंपना होगा जो उसके बाद उनकी ओर से कार्य करने के लिए अधिकृत होगा – क्योंकि, यदि सभी व्यक्ति एक साथ ऐसा करते हैं, तो प्रभावी राजनीतिक शासन के लिए स्थिति बनाई जाएगी, और लंबी अवधि में सुरक्षा और शांति होगी" (हेल्ड, 1989 : 40)। यह शक्तिशाली एकल प्राधिकरण वह राज्य होगा जिसके पास पूर्ण और अविभाजित संप्रभुता होगी। सबसे महत्वपूर्ण बात, हॉब्स ने रेखांकित किया कि संप्रभु व्यक्तियों के बीच इस अनुबंध का हिस्सा नहीं था और इसलिए अपने आप में एक अभिकर्ता था। यह एक "कृत्रिम आदमी' था, जिसे स्थायित्व और संप्रभुता द्वारा परिभाषित किया गया था, जो समाज और राजनीति को 'जीवन और गति देता है'" (हेल्ड 1989: 40)। केवल ऐसा ढांचा ही राज्य के अंदर नागरिकों के जीवन और सुरक्षा की गारंटी देने में सक्षम होगा। हॉब्स ने राज्य को प्रदत्त पूर्ण शक्ति के लिए सबसे व्यापक औचित्य प्रदान किया है।

8.5.2. लोकप्रिय संप्रभुता

पूर्ण संप्रभुता वाले राज्य के लिए बोडिन और हॉब्स द्वारा दिए गए तर्कों ने कई सवालों को जन्म दिया है। जिनमें से सबसे बुनियादी बात यह थी कि संप्रभुता कहाँ होनी चाहिए, राज्य, शासक, सम्राट या लोगों के पास? राज्य की कार्रवाई के वैध दायरे से संबंधित सवाल भी थे, यानी संप्रभु शक्ति का रूप और दायरा क्या होना चाहिए? इसने लोकप्रिय संप्रभुता पर प्रवचन को सबसे आगे बढ़ाया। लोकप्रिय संप्रभुता यह मानती है कि लोगों की सहमति एक मौलिक आधार है जिसके द्वारा राज्य के अधिकार को उचित ठहराया जा सकता है। इस अवधारणा के मुख्य अग्रदूत जॉन लॉक और जीन–जैक्स रूसो थे। 1632 से 1704 तक रहने वाले अंग्रेजी दार्शनिक जॉन लॉक ने 1689 में सरकार के दो ग्रंथ प्रकाशित किए, जहां उन्होंने सामाजिक अनुबंध सिद्धांत के अपने संस्करण को सामने रखा। लॉक के अनुसार, वास्तव में संप्रभुता लोगों के पास है। यह लोग हैं जो इस शक्ति को राज्य को हस्तांतरित करते हैं ताकि वह अपने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा कर सके। डेविड हेल्ड (1989:43) लिखते हैं, "इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण है कि, लॉक के अनुसार शासितों के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए सरकार को व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक अधिकार दिया जाता है; और यदि इन उद्देश्यों को पर्याप्त रूप से पूर्ण करने में विफल हो जाते हैं, तो अंतिम न्यायाधीश वे लोग होते हैं–नागरिक– जो यदि आवश्यक हो, तो सरकार के मौजूदा स्वरूप को हटा सकते हैं"(1989:43)।

लॉक ने 1688 की गौरवशाली क्रांति का समर्थन किया, जो अंग्रेजी ताज के साथ समाप्त हो गया, जिसने अपने अधिकार पर संवैधानिक सीमाओं को स्वीकार किया। लॉक का सिद्धांत उनके प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत पर आधारित था, जहां उन्होंने जोर देकर कहा कि मनुष्य जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के प्राकृतिक अधिकारों के साथ पैदा होता है। प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जो सभी पर लागू होते हैं, चाहे वे किसी भी स्थान के हों और कोई भी संस्था/राज्य/सरकार इन अधिकारों को नहीं छीन सकती है। इसलिए "सरकारी नियम, और इसकी वैधता व्यक्तियों की 'सहमति' से कायम है" (हेल्ड 1989 : 43)। लॉक के सिद्धांत ने प्रतिपादित किया कि सर्वोच्च शक्ति/संप्रभुता लोगों के साथ उत्पन्न होती है और इसे लोगों द्वारा अपने प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से राज्य को हस्तांतरित किया जाता है। यह लोकप्रिय संप्रभुता की अवधारणा का आधार बन गया।

जीन–जैक्स रूसो (1712–1778) ने इस अवधारणा को यह कहते हुए आगे बढ़ाया कि "राजनीतिक शक्ति के एक सुसंगत रूप के लिए एक स्पष्ट और औपचारिक स्वीकृति की आवश्यकता होती है जो कि संप्रभुता लोगों में उत्पन्न होती है और उसे वहीं रहना चाहिए" (हेल्ड 1989:44)। उन्होंने कहा कि यह केवल "सामान्य इच्छा" के मॉडल के माध्यम से हो सकता है, जहां व्यक्तिगत नागरिक स्वयं विचार–विमर्श और चर्चा की प्रक्रिया के बाद सामान्य अच्छाई की पूर्ति के लिए कानून बनाएंगे। "समुदाय के लिए सबसे अच्छा क्या है यह तय करने और उचित कानून बनाने के लिए सभी नागरिकों को एक साथ आना होगा। शासित शासक होना चाहिए..." (हेल्ड 1989 : 45)।

बोध प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की युक्तियों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) आधुनिक राज्यों के विकास में निरंकुश राजशाही की क्या भूमिका थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संप्रभुता क्या है? इसने आधुनिक राष्ट्र राज्य को अन्य राजनीतिक संस्थाओं से अलग कैसे स्थापित किया?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 आधुनिक राष्ट्र राज्यों का औपचारीकरण और लोकतंत्र का उदय

"विभिन्न राष्ट्र–राज्यों को जो कि अपेक्षाकृत केंद्रीकृत, विभेदित, और स्वायत्त संगठनों की तरह थे, उन्हें यूरोपीय मानचित्र पर हावी होने के लिए बड़े, निकटवर्ती, और स्पष्ट रूप से बंधे क्षेत्रों के साथ बल का उपयोग करने में काफी समय लगा" (टिली 1990:43)। 990 में, यूरोपीय भूभाग राजनीतिक रूप से विभाजित और अतिव्यापी प्राधिकरण के साथ खंडित था। हालाँकि, "1490 तक भविष्य खुला रहा; "राज्य" शब्द के लगातार उपयोग के बावजूद, एक या दूसरे प्रकार के साम्राज्यों ने अधिकांश यूरोपीय परिदृश्य पर दावा किया, और महासंघ महाद्वीप के कुछ हिस्सों में व्यवहार्य बने रहे। 1490 के कुछ समय बाद, यूरोपीय लोगों ने उन वैकल्पिक अवसरों को बंद कर दिया, और लगभग पूरी तरह से अपेक्षाकृत स्वायत्त राष्ट्रीय राज्यों से मिलकर एक प्रणाली के निर्माण की दिशा में निर्णायक रूप से आगे बढ़ गए" (टिली 1990:44)। निरंकुश शासकों के शासन में यूरोप में सत्ता का केंद्रीकरण बढ़ रहा था। राजनीति के व्यावहारिक जीवन में इस तरह के कदमों को इस समय संप्रभुता के सिद्धांतों, विशेष रूप से राज्य संप्रभुता के सिद्धांतों द्वारा वैचारिक क्षेत्र में समर्थित किया गया था। समय के साथ, लोकप्रिय संप्रभुता की धारणा के उदय के साथ, शासकों और लोकतांत्रिक शासन से जवाबदेही के लिए जोर दिया गया। महत्वपूर्ण रूप से, संप्रभुता की अवधारणा ने आधुनिक राष्ट्र राज्य की नींव को रेखांकित किया जो शासन की एक अवैयक्तिक संरचना थी।

डेविड हेल्ड (1989:48–49) ने आधुनिक राज्य के सबसे "प्रमुख नवाचारों" को रेखांकित किया है: –

- "क्षेत्रीयता – जबकि सभी राज्यों ने क्षेत्रों पर दावा किया है, यह केवल आधुनिक राज्य प्रणाली के साथ है कि सटीक सीमाएं तय की गई हैं।
- हिंसा के साधनों पर नियंत्रण – बल और जबरदस्ती के साधनों (एक स्थायी सेना और पुलिस द्वारा कायम) पर एकाधिकार रखने का दावा लोगों की 'शांति' से ही संभव हुआ– राष्ट्र राज्य में सत्ता के प्रतिद्वंद्वी केंद्रों और प्राधिकरण के टूटने से। आधुनिक राज्य का यह तत्व उन्नीसवीं शताब्दी तक प्राप्त नहीं हुआ था, और कई देशों में एक नाजुक उपलब्धि बनी रही।
- सत्ता की अवैयक्तिक संरचना – एक अवैयक्तिक और संप्रभु राजनीतिक व्यवस्था का विचार – अर्थात, एक क्षेत्र पर सर्वोच्च अधिकार क्षेत्र के साथ सत्ता की एक कानूनी रूप से परिबद्ध संरचना ––– प्रबल नहीं हो सकती थी, जबकि राजनीतिक अधिकारों, दायित्वों और कर्तव्यों की कल्पना की गई थी, जो धर्म और पारंपरिक विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के दावे से निकटता से जुड़ा हुआ है।
- वैधता – जब 'ईश्वरीय अधिकार' या 'राज्य के अधिकार' के दावों को चुनौती दी गई और नष्ट कर दिया गया, तभी 'व्यक्तियों' और 'लोगों' के रूप में मनुष्य के लिए राजनीति में 'सक्रिय नागरिक' के रूप में एक स्थान हासिल करना संभव हो गया। नागरिकों की वफादारी कुछ ऐसी बन गई जिसे आधुनिक राज्यों को जीतना पड़ा: इसमें हमेशा राज्य द्वारा वैध होने का दावा शामिल था क्योंकि यह अपने नागरिकों के विचारों और हितों को प्रतिबिंबित या प्रतिनिधित्व करता था। (हेल्ड 1989: 48–49)।

यह तर्क दिया जाता है कि आधुनिक राज्य का विकास और पश्चिमी यूरोप में एक प्रतिनिधि उदार लोकतंत्र का विकास कई कारकों और प्रक्रियाओं का परिणाम था। डेविड हेल्ड (1989:52) ने तीन बड़े स्वरूपों की रूपरेखा तैयार की हैः (1) युद्ध और सैन्यवाद, (2) पूंजीवाद का उदय, और (3) नागरिकता के लिए संघष। हेल्ड का मानना है कि इन तीन अस्थायी रूप से लंबी खींची गई और जटिल प्रक्रियाओं के कारण राष्ट्र राज्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक अस्तित्व का प्रमुख रूप बन गए। सबसे पहले, युद्ध और सैन्यवाद की भूमिका के संबंध में, जियानफ्रेंको पोग्गी 2001 : 99) ने जोर देकर कहा है कि आधुनिक राज्य शुरू में अपनी शक्ति को स्थापित करने और बनाए रखने के लिए "युद्ध करने" के उद्देश्यों के लिए था। बदले में इस "युद्ध निर्माण" ने आधुनिक राज्य की संरचनाओं और प्रक्रियाओं को और मजबूत करने में भूमिका निभाई। चार्ल्स टिली (1985 : 181) ने लिखा है कि राज्य के एजेंट पहले चार अलग–अलग गतिविधियों को अंजाम देते हैं, "युद्ध करना या बननाः उन क्षेत्रों के बाहर अपने स्वयं के प्रतिद्वंद्वियों को नष्ट करना या बेअसर करना जिसमें उनकी स्पष्ट और निरंतर प्राथमिकता है।" दूसरा, "राज्य बनानाः उन क्षेत्रों के अंदर अपने प्रतिद्वंद्वियों को खत्म करना या बेअसर करना"; तीसरा, "सुरक्षाः अपने ग्राहकों के दुश्मनों को खत्म करना या बेअसर करना"; और चौथा, "निष्कर्षणः पहली तीन गतिविधियों को पूरा करने के लिए साधन प्राप्त करना – युद्ध बनाना, राज्य बनाना और सुरक्षा" (टिली 1985:181)। इसलिए, कई "राज्य निर्माताओं को एक खुली और निर्मम प्रतिस्पर्धा में बंद कर दिया गया था, जिसमें टिली ने कहा, 'अधिकांश दावेदार हार गए' (1975, पृष्ठ 15)। ब्रिटेन, फ्रांस और स्पेन जैसे राज्य–निर्माण के सफल मामले 'उत्तरजीवी' थे" (हेल्ड 1989:54)।

वेस्फेलिया शांति संधि

वेस्टफेलिया की शांति वर्तमान जर्मनी में स्थित ओस्नाब्रुक और मुंस्टर के शहरों में 1648 में हस्ताक्षरित समझौता संधियों का एक संग्रह है। इसने "स्पेन और डच के बीच अस्सी साल के युद्ध (1568–1648) और तीस साल के युद्ध के जर्मन चरण (1618–1648)" (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका) को समाप्त किया। वेस्टफेलिया की शांति को अंतरराष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि यह प्रतिपादित किया गया था कि इन संधियों ने अंततः अंतर–राज्य प्रणाली की शुरुआत की जिसमें दुनिया समकालीन रूप से विभाजित है। इसलिए इस अंतर–राज्य प्रणाली पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की अवधारणा को अक्सर 'वेस्टफेलियन' प्रणाली के रूप में संदर्भित किया जाता है (हेल्ड 1989:77)। इसने पहली बार अंतर्राज्यीय मामलों में संप्रभुता के सिद्धांत को मजबूत किया। वेस्टफेलिया के मॉडल ने स्थापित किया कि "दुनिया में संप्रभु राज्य शामिल हैं, और यदि विभाजित हैं, तो कोई श्रेष्ठ प्राधिकरण नहीं है" (हेल्ड 1989: 78)। संप्रभुता का अर्थ था कि राज्य के पास अपने क्षेत्र में अधिकार क्षेत्र की एकमात्र शक्ति थी, जिसे 'आंतरिक संप्रभुता' के रूप में जाना जाने लगा। इसका अर्थ यह भी था कि अन्य राज्यों के साथ संबंधों में औपचारिक समानता मौजूद थी जो राज्यों के बीच स्वतंत्र राजनयिक संबंध स्थापित करने की नींव बन गई। इसे 'बाहरी संप्रभुता' के रूप में जाना जाने लगा।

दूसरे, पूंजीवाद और आधुनिक राज्य के गठन के बीच संबंधों के संबंध में, डेविड हेल्ड (1989:71) ने माना है कि आधुनिक राज्य "सोलहवीं शताब्दी के अंत से अपने बाजारों के तेजी से विकास के कारण आर्थिक रूप से सफल थे, और विशेष रूप से बाद में अठारहवीं शताब्दी के मध्यतक"। पूंजी संचय की निरंतर प्रक्रिया ने केंद्रीकृत राज्य के आर्थिक आधार का विस्तार किया। इसने बदले में खंडित राजनीतिक संरचनाओं वाले अन्य छोटे राज्यों की युद्ध क्षमता को कम कर दिया या वे जो अधिक पारंपरिक रूपों वाले जो जबरदस्ती करने की शक्ति पर निर्भर थे (हेल्ड 1989: 71–72)। हेल्ड (1989 : 60) ने यह भी रेखांकित किया कि मुस्लिम दुनिया के पतन के बाद, जो 1000 ईस्वी के आसपास विश्वव्यापी व्यापार संबंधों पर हावी थी, यह यूरोप था जो दुनिया की ओर बाहर की ओर निकला। "राज्यों और समाजों के बीच अंतर्संबंधों का विकास – यानी वैश्वीकरण – यूरोप के विस्तार से उत्तरोत्तर आकार लेता गया। वैश्वीकरण का प्रारंभ में अर्थ था 'यूरोपीय वैश्वीकरण' (हेल्ड 1989: 60)। यूरोप के राज्यों को उनके सैन्य और मजबूत नौसैनिक बलों द्वारा प्रयास में मदद की गई थी। इन विकासों के साथ शेष विश्व में उपनिवेश बनाने की आगे की प्रक्रिया शुरू हुई। स्पेनिश, पुर्तगाली, डच, ब्रिटिश और फ्रेंच ने एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशों के लिए हाथापाई की। उपनिवेशों की संपत्ति को खत्म करके यूरोप के संसाधनों में वृद्धि ने अपनी व्यवस्था को और मजबूत किया। "विशेष रूप से, यूरोपीय विस्तार राज्य गतिविधि और दक्षता के विकास का एक प्रमुख स्रोत बन गया" (हेल्ड 1989:61)।

तीसरा, नागरिकता के लिए संघर्ष और उदार लोकतंत्र के उदय के विषय में, हेल्ड (1989 : 69) ने तीन कारणों पर प्रकाश डाला कि क्यों "नागरिकता नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के रूप में कई पश्चिमी राज्यों में निश्चित रूप ले लेती है" जे अंततः उदारवाद लोकतांत्रिक आधुनिक राष्ट्र राज्य के उदय की ओर ले जाती है। ये, सबसे पहले, "सत्ता की पारस्परिकता" हैं, जहां राष्ट्रीय सरकारें विशेष रूप से युद्ध जैसे आपातकाल के समय में आबादी के सहयोग पर निर्भर होने लगीं। दूसरा, विशेष रूप से धर्म और संपत्ति के अधिकारों पर आधारित वैधता के पारंपरिक रूपों का कमजोर होना। इसने राजनीतिक सत्ता की वैधता की वैकल्पिक धारणाओं को जन्म दिया जो राज्यपालों और शासितों के बीच पारस्परिक संबंधों पर आधारित थी। तीसरा, उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र ने नागरिक और आर्थिक समाज की बढ़ती स्वायत्तता को खतरा नहीं होने दिया। इन तीन कारणों ने उदार लोकतांत्रिक राज्य के अंतिम विकास में सहयोग किया। हालाँकि, रास्ता लंबा था और लोगों के विभिन्न समूहों को कई लड़ाइयाँ जीतनी पड़ीं। दुनिया के लगभग सभी हिस्सों में महिलाओं को अपने मूल अधिकारों के लिए बड़े पैमाने पर संघर्ष करना पड़ा है, चाहे वह पूर्व में हो या पश्चिम में। 1944 में फ्रांस में और 1928 में ब्रिटेन में महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया गया था। "सत्रहवीं शताब्दी के इंग्लैंड में 'प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं की खोज से लेकर उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में वास्तव में सार्वभौमिक मताधिकार प्राप्त करने के लिए विविध संघर्षों तक, सरकार से अधिक जवाबदेही के अधिवक्ताओं ने राजनीतिक निर्णयों को चुनने, अधिकृत करने और नियंत्रित करने के संतोषजनक साधन स्थापित करने की मांग सरकार से की है" (हेल्ड 1989: 70)।

बोध प्रश्न 3

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की युक्तियों के लिए इकाई का अंत देखें।

1) डेविड हेल्ड द्वारा दिए गए तीन बड़े स्वरूपों की पहचान करें जिससे उदार प्रतिनिधि लोकतांत्रिक राज्य का विकास हुआ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.7 सारांश

आधुनिक राष्ट्र राज्य के उत्थान और विकास को पश्चिमी यूरोप में स्थित एक लंबी और असमान प्रक्रिया के रूप में समझने की जरूरत है। इसे मध्यकालीन दुनिया के टूटने की पृष्ठभूमि में समझने की जरूरत है जो विभाजित और अतिव्यापी सत्ता और धार्मिक संघर्षों का स्थान था। कुछ घटनाक्रमों ने इस संदर्भ में बदलाव किया। इन विकासों में सुधार, अंतर्राष्ट्रीय पूंजी का उदय, व्यापार और उपनिवेशवाद के माध्यम से यूरोपीय विस्तार, निरंकुश राजतंत्रों का उदय और संप्रभुता का सैद्धांतिक प्रवचन शामिल था। ये आधारभूत पृष्ठभूमि बन गए जिससे आधुनिक राष्ट्र राज्यों का विकास हुआ। ये राज्य स्वयं राजतंत्रीय रूपों से उदार प्रतिनिधि लोकतंत्रों के रूप में विकसित हुए हैं।

8.8 संदर्भ

दास, स्वाहा. (2008) द स्टेट. इन राजीव भार्गव और अशोक आचार्य (एड.) पालिटिकल थ्योरी. नई दिल्लीः पियर्सन लॉन्गमैन.

एर्टमैन, थॉमस. (2005). 'स्टेट फॉर्मेशन एंड स्टेट बिल्डिंग इन यूरोप'. इन थॉमस जानोस्की, रॉबर्ट अल्फोर्ड, अलेक्जेंडर हिक्स और मिल्ड्रेड ए श्वाट्र्ज (एड.). द हैंडबुक ऑफ पॉलिटिकल सोशियोलॉजी. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

हे, कॉलिन और माइकल लिस्टर. (2006). इंटरोडक्शन : थ्योरीज ऑफ स्टेट. इन कॉलिन हे, माइकल लिस्टर और डेविड मार्श (एड.). द स्टेट थ्योरिज़ एंड इश्यूज. लंदनः पालग्रेव मैकमिलन.

हेल्ड, डेविड. (1989). पालिटिकल थ्योरी एंड द मार्डन स्टेट. लंदनः पालिटी प्रेस.

टिली, चार्ल्स. (1985) वॉर मेकिंग एंड स्टेट मेकिंग ऐज ऑर्गनाइज्ड क्राइम. इन इवांस, रुशेमेयर और स्कोकपोल. (एड्स). ब्रिगिंग द स्टेट ब्रैक इन. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

टिली, चार्ल्स. (1990). यूरोप सिटिज एंड स्टेट्स. इन कोअरशन, कैप्टिल एंड यूरोपियन स्टेट्स. मैसाचुसेट्सः बेसिल ब्लैकवेल.

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) राज्यों के अधिकारों और कर्तव्यों पर मोंटेवीडियो कन्वेंशन, और ख) स्थायी जनसंख्या; परिभाषित क्षेत्र; सरकार; संप्रभुता

2) विभाजित प्राधिकरण, अतिव्यापी अधिकार क्षेत्र, धार्मिक संघर्ष, अस्थिरता और निरंतर युद्ध

बोध प्रश्न 2

1) उत्तर में क्षेत्र के भीतर कानून–व्यवस्था, प्रशासन, अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति में एकरूपता लाने में उनकी भूमिका को उजागर करें।

2) यह सर्वोच्च वैध शक्ति है; आधुनिक संप्रभु राज्यों को आंतरिक रूप से प्राधिकरण की अवैयक्तिक संरचना की विशेषता है; राज्यों के बीच औपचारिक समानता और अन्य आंतरिक मामलों में गैर–हस्तक्षेप के सिद्धांत की स्वीकृति

बोध प्रश्न 3

1) क) युद्ध और सैन्यवाद; ख) पूंजीवाद का उदय; और, ख) नागरिकता के लिए संघर्ष।

इकाई 9 उत्तर–औपनिवेशिक राज्य*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 राजनीतिक सिद्धांत में राज्य : उदारवादी और मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

9.3 उत्तर–औपनिवेशिक समाजों की ऐतिहासिक विशिष्टताएँ

9.4 उत्तर–औपनिवेशिक राज्यः उदारवादी और नव–मार्क्सवादी सिद्धांत

9.5 आधुनिकीकरण का दृष्टिकोण : विकासशील राज्य

9.6 निर्भरता परिप्रेक्ष्य : अल्पविकसित राज्य

9.7 उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य और वर्गः सापेक्षिक स्वायत्तता पर लेख

9.8 भारत में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य

9.9 वैश्वीकरण के युग में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य

9.10 सारांश

9.11 संदर्भ

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

यह इकाई उदारवादी एवं मार्क्सवादी दृष्टिकोण से उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति तथा विकास का विश्लेषण करती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न करने के योग्य हो जाएँगे :

- उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति एवं विशेषताओं पर चर्चा करने में,
- राज्य और विकास पर निर्भरता सिद्धांतकारों के तर्कों का विश्लेषण करने में,
- उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की स्वायत्तता पर चर्चा करने में,

* प्रो. आशुतोष कुमार, अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान संकाय, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

- उत्तर–औपनिवेशिक की बदलती प्रकृति तथा उस पर वैश्वीकरण के प्रभाव पर चर्चा करने में।

9.1 परिचय

एक स्विस न्यायविद और राजनीतिक सिद्धांतकार जेहान कास्पर ब्लंटशली (1808–1881), राजनीतिक विज्ञान का राज्य से संबंधित एक शास्त्र या विज्ञान के रूप में वर्णन करते हैं। लगभग एक सदी बाद, नॉरमन पी. बेरी (1944–2008) एक ब्रिटिश राजनीतिक सिद्धांतकार का लेखन यह प्रतिबिंबित करता है कि कैसे "राजनीतिक सिद्धांत का इतिहास मुख्य रूप से राज्य से संबंधित रहा है"। राज्य की अवधारणा आधुनिक समाज में अंतर्भूत थी। जैसा कि ब्रिटिश समाजशास्त्री राल्फ मिलिबैंड (1924–1994) का अवलोकन है कि : "ऐसा लगभग कुछ भी नहीं है जो राज्य के समान महत्वपूर्ण हों।''

इसी प्रकार, अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिक मार्टिन कार्नोय (1984) ने राज्य की बढ़ती महत्तता की ओर ध्यान आकर्षित किया। उनके शब्दों में, "प्रत्येक समाज में, औद्योगिक राज्यों से लेकर तीसरी दुनिया के प्राथमिक उत्पादों के अच्छे निर्यातक, तथा समाज के हर पहलू में, सिर्फ राजनीति में ही नहीं, बल्कि अर्थशास्त्र (उत्पादन, वित्त, वितरण) में, विचारधारा (स्कूली शिक्षा, मीडिया) में तथा कानून प्रवर्तन (पुलिस, सैन्यबल)में.... ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य के पास आर्थिक विकास, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कुंजी है तथा हथियारों की बढ़ते परिष्करण के माध्यम से जीवन और मृत्यु की स्वयं की कुंजी भी उसी के पास है। वर्तमान वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में राजनीति को समझने के लिए, समाज की मौलिक गतिशीलता को समझना होगा।" यही कारण है कि राजनीति विज्ञान में राज्य के विषय में अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया जाता है। तभी, राजनीतिक विज्ञान शास्त्र में, विभिन्न विचारधाराओं में, राज्य और उसकी प्रकृति गहन बहस का विषय है।

सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में राज्य की केंद्रीयता इसे दुशप्राप्य बना देती है। जिस प्रकार से राजनीतिक सिद्धांत में राज्य की संकल्पना की गई है, उसके बारे में होने वाली गहन बहस की यह व्याख्या करता है। इस इकाई की शुरूआत में हम राज्य के उदारवादी और मार्क्सवादी दृष्टिकोणों की मुख्य धारणाओं का परीक्षण करते हैं, और फिर उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की विशिष्टताओं को उनके विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक ऐतिहासिक विशेषताओं को सामने लाने के लिए आगे बढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में, हम उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति पर बहस में, इसके सामाजिक गठन में एवं वर्गों से सापेक्ष स्वायत्तता की क्षमता मे अध्ययनरत रहते हैं।

9.2 राजनीतिक सिद्धांत में राज्यः उदारवादी और मार्क्सवादी परिपेक्ष्य

अकादमिक साहित्य के माध्यम से कि जिस तरह से राज्य और वर्ग की अवधारणा उदारवादी एवं मार्क्सवादी दोनों परंपराओं में की गई हैं, उसमें तीन मूलभूत अंतर हैं।

सर्वप्रथम, उदारवादी सिद्धांतवादी समाज में मौलिक सद्भाव पर प्रकाश डालते हैं, जबकि मार्क्सवादी विश्लेषक समाज में निहित उस अंतर्निहित संघर्ष पर जोर देते हैं जिसका राज्य और समाज के दिए गए ढ़ांचे के अंतर्गत समाधान नहीं किया जा सकता हैं। मार्क्सवादी

सिद्धांत में, राज्य को दमनकारी के रूप में देखा जाता हैं, इसके उपकरण श्रमिक वर्गो पर संपत्तिशाली वर्गो के वैचारिक और बलपूर्वक वर्चस्व का प्रतिनिधित्व करते हैं, चाहे वे सांमती या पूंजीवादी हों।

दूसरा, उदारवादी राजनीतिक सिद्धांत में वर्ग की अवधारणा व्यवसाय, आय और सामाजिक स्थिति के आधार पर वर्णनात्मक श्रेणी के रूप में की जाती हैं। हालांकि मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धांत वर्ग को एक वैचारिक उपकरण के रूप में देखता हैं, जिसके द्वारा विश्लेषित करता है कि कैसे आर्थिक उत्पादन की प्रक्रिया में व्यक्तियों को असमानता के साथ रखा जाता हैं।

तीसरा, इस आग्रह के बावजूद कि राज्य तटस्थ है और समाज में सभी के लिए लाभकारी हैं, उदारवादी राजनीतिक सिद्धांतवादी आधुनिक राज्य की भयंकर शक्ति के विषय में गहराई से जानते हैं। उनका मानना हैं कि राज्य की सत्ता को संवैधानिक तंत्र और नागरिकों की राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से नियंत्रित करने की आवश्यकता हैं। नागरिक समाज राज्य की अनियंत्रित शक्ति पर अंकुश लगाने में महत्वपूर्ण हैं। दूसरी ओर, मार्क्सवादी सिद्धांतकारों का तर्क है कि पूंजीवादी समाज में राज्य स्वभाव से दमनकारी होता हैं क्योंकि यह प्रभुत्वशाली संपत्तिशाली वर्गो के हितों का प्रतिनिधित्व करता हैं। उनका मानना है कि पूंजीवादी समाज और राज्य के मौजूदा ढ़ांचे के अंतर्गत व्यक्ति की गरिमा एवं स्वायत्तता को प्राप्त नहीं की किया जा सकता हैं। इसलिए, वे मौजूदा राज्य को उखाड़ फेंकने तथा एक समाजवादी राज्य की स्थापना का आह्वान करते हैं, जिसकी शक्ति और अधिकार का आधार मजदूर वर्गों के पास होगा।

मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य को वर्ग संघर्ष में आधार बनाता हैं। परिणामस्वरूप, उदारवादी सिद्धांत में एक अमूर्त इकाई के रूप में उभरने वाले राज्य को मार्क्सवादी सिद्धांत में वास्तविक और एक मूर्त आकार दिया जाता हैं। मार्क्सवादी इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य के अध्ययन के लिए समाज और सामाजिक वर्गों का अध्ययन पहले होना चाहिए।

वर्गो के दो आयाम हैं:– वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक। उन्हें उत्पादन के साधनों के कब्जे या/और इस तरह के कब्जे की कमी से परिभाषित किया जाता हैं। मार्क्सवादी सिद्धांत अन्य वर्गो के अस्तिव को अस्वीकार नहीं करता हैं, बल्कि केवल दो वर्गो पर केंद्रित रहता हैं– पूंजीवादी वर्ग और मजदूर वर्ग –ये दो मूलभूत वर्ग समाज का निर्माण करते है।

वर्ग राजनीतिक वास्तविकता बन जाती हैं, जब वे वर्ग स्थितियों के प्रति सचेत होते हैं और वर्ग चेतना ही वर्ग संघर्ष की ओर ले जाती हैं। वर्गों का अस्तित्व सीधे वर्ग संघर्ष की ओर नहीं ले जाता हैं, बल्कि विचारधारा वर्ग चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्ग चेतना विभिन्न कारको पर निर्भर करती हैं, उनमें से कई ऐतिहासिक हैं। यदि प्रभुत्वशाली वर्ग राज्य का आधार बनते हैं, तो समाज में वर्ग संघर्ष उस सामाजिक आधार को निरंतर खतरे में डालता है। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य को समाज में प्रमुख वर्गो के राजनीतिक संगठन के रूप में देखता हैं। इस प्रकार, राज्य वर्ग आधिपत्य को बनाए रखने का साधन हैं। इसी काल में, एक सापेक्ष स्वायत्तता शोध (थीसिस) उपलब्ध हैं जो मार्क्स और एंगेल्स के साथ–साथ राल्फ मिलिबैंड एवं निकोस पौलंत्ज़स जैसे मार्क्सवादियों के लेखन में परिलक्षित होता हैं।

कम्युनिष्ट मेनिफेस्टो और *कैपिटल* खंड–1 में, मार्क्स और एंगेल्स राज्य को पूंजीपति वर्ग की कार्यकारी समिति के रूप में संदर्भित करते हैं। अन्य ऐतिहासिक राजनीतिक लेखन

जैसे *ऍटीन ब्रूमायर, द पीज़ैन्ट वार इन जर्मनी, द क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस, द कांस्टूशन क्वशच़न इन जर्मनी, द पर्शियन कांस्टीट्यूशन,* में वे तर्क देते है कि राज्य के बलपूर्ण और वैचारिक तंत्र कुछ परिस्थितियों में प्रभुत्वशाली वर्गो से सापेक्ष स्वायत्तता प्राप्त करते हैं। जब एक विशेष सामाजिक संरचना में एक–दूसरे की शक्ति को संतुलित करने के लिए संघर्षरत संपत्तिशाली वर्ग, या जब उत्पादन के किसी विशेष तरीके से विशिष्ट विकास के परिणामस्वरूप, या सैन्य विजय के कारण सामाजिक वर्गों की पीढ़ी कमजोर होती हैं।

इस प्रकार, मार्क्सवादी सिद्धांत में, राज्य का स्वरूप क्या होगा, यह निर्भर इस पर होगा कि प्रभुत्वशाली सामाजिक वर्ग की अधीनता या सामाजिक वर्गो के संबंध में इसकी सापेक्ष स्वायत्तता– ये एक समान पथ का अनुसरण नहीं करते है जैसा कि आमतौर पर स्वीकार किया जाता हैं। राज्य का मार्क्सवादी विश्लेषण और सामाजिक वर्गों के साथ इसका संबंध बहुआयामी एवं द्वंद्वात्मक हैं। यह एक सामाजिक गठन और उससे उत्पन्न होने वाले सामाजिक वर्गो, उनकी ताकत एवं कमजोरियों तथा अपने स्वयं के वर्ग हितों के लिए राज्य और उसके तंत्र पर आधिपत्य करने के उनके संघर्ष के यथार्थ अध्ययन पर आधारित हैं। यह पहलू बाद के मार्क्सवादी और नव–मार्क्सवादी सिद्धांतो में परिलक्षित होता हैं, जो विशेष रूप से ऐतिहासिक एवं आर्थिक रूप से अलग औपनिवेशिक समाजों से संबंधित हैं। इसकी परीक्षण हम निम्नलिखित अनुभागों में करेंगे।

9.3 उत्तर–औपनिवेशिक समाजों की ऐतिहासिक विशिष्टताएँ

सभी राज्य ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ के उत्पाद हैं। राजनीतिक क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से निर्मित हैं, और इसलिए ऐतिहासिक परीक्षण राज्य की प्रकृति के गहन विश्लेषण के लिए सैद्धांतिक रूप से एक पूर्व अपेक्षा है। मार्क्स एवं एंगेल्स के लिए ब्रिटेन और जर्मनी जैसे उन्नत पूंजीवादी समाज ने वास्तविक अनुभवजन्य सामग्री प्रदान की, जिसे उन्होंने राज्य की प्रकृति के अपने सिद्धांत के लिए खोजा। बाद के मार्क्सवादियों द्वारा सापेक्ष स्वायत्तता की अवधारणा के विस्तारण में भी मुख्य रूप से पश्चिम में स्थित उन्नत पूंजीवादी समाजों में राज्य की प्रकृति और भूमिका को संदर्भित किया गया है। स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि क्या पूंजीवादी समाजों में राज्य की प्रकृति के विषय में पारम्परिक सूत्रीकरण जैसा कि मार्क्स एवं एंगेल्स के लेखन में व्यक्त किया गया है तथा मार्क्सवादियों द्वारा आगे विकसित किया गया हैं, ऐतिहासिक रूप से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के विभिन्न राज्यों के लिए लागू या प्रासंगिक हो सकता हैं। यह प्रश्न प्रासंगिक हो जाता हैं क्योंकि औपनिवेशिक पूंजीवादी शोषण से इन राज्यों की सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्थाएं विकृत हो गई थीं।

जैसा कि सर्वविदित हैं कि दीर्घकालिक औपनिवेशिक प्रभुत्व के प्रभाव के फलस्वरूप एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में वर्ग गठन और पुनर्गठन की वास्तविक प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप से पश्चिम के पूंजीवादी देशों से अलग रही हैं। राज्य के सिद्धांतकारों के मध्य एक व्यापक सहमति है कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति के सिद्धांत को लैटिन अमेरिकी, एशियाई और अफ्रीकी समाजों में प्रचलित बहुत भिन्न परिस्थितियों में अपनाया गया हैं। राल्फ मिलिबैंड (1978) के शब्दों में, 'मार्क्सवाद मुख्य रूप से बुर्जुआ/पूंजीवादी संदर्भ में एवं कम से कम कहने के लिए, अल्प–विकास की धारणा के अंतर्गत आने वाली बहुत अलग परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।'

उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की ऐतिहासिक विशिष्टता को नव–मार्क्सवादियों द्वारा भी रेखांकित किया गया हैं क्योंकि उनका तर्क है कि सदियों से औपनिवेशिक प्रभुत्व ने समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना को प्रभावित किया तथा उन्हें विशिष्टता प्रदान की। उपनिवेशवाद ने पूरे समाज के शोषण को उसकी जटिलताओं, वर्ग विभाजन, सत्ता के आंतरिक संबंधों, वर्चस्व, एक अन्य समाज द्वारा सांस्कृतिक अस्पष्टता के साथ, स्थानिक रूप से कहीं और निहित किया। इस प्रकार, पूंजीवाद से पूर्व की स्थिति में सामाजिक संरचनाओं की प्रकृति, पूंजीवादी हस्तक्षेप के तरीके एवं उपनिवेशीकरण के अनुभव से संबंधित अन्तर, उन कारकों में से है जो मार्क्सवादी सिद्धांतकारों द्वारा पश्चिमी समाजों में राज्य के लिए उपयोग की जाने वाली विश्लेषण की श्रेणियों को इन पर स्थानांतरित करते हैं, जो कि विभिन्न आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक उत्तर–औपनिवेशिक संरचनाओं से समस्याग्रस्त हैं।

9.4 उत्तर–औपनिवेशिक राज्यः उदारवादी और नव–मार्क्सवादी सिद्धांत

उपनिवेशवाद की समाप्ति के समय राज्य की क्षमता, राज्य के कुलीनों के इरादों या राज्य के पूर्व–व्यवस्थित ज्ञान के विषय में कुछ संदेह व्यक्त किए गए थे कि यह क्या करना चाहता हैं या इसे किस दिशा में जाना है। राष्ट्रावादी अभिजात वर्ग के कौशल ने राष्ट्रवादी आंदोलनों को संकीर्ण सांप्रदायिक हितों से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया था, जिसको अच्छी तरह से स्वीकार किया गया था। इस अभिजात वर्ग की राष्ट्रवादी आंदोलन में भूमिका के कारण इन्हें व्यापक वैधता और जनता के बीच स्वीकार्यता प्राप्त हुई थी। उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में उदयीमान लोकतंत्रों का मुख्य राजनीतिक एजेंडा सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाना था। औपनिवेशिक राज्यवादी परंपरा के अनुरूप सक्रिय राज्यों की इस धारणा ने उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को अपने सामाजिक वर्गो के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन पर प्रचुर मात्रा में शक्ति का उपयोग करने की अनुमति दी।

उपनिवेश विरोधी संघर्षो को राज्य सत्ता की आकांक्षा के रूप में परिभाषित किया गया था। अधिकांश उपनिवेशों में जनसंघर्ष की प्रकृति राजनीतिक थी। इस तथ्य ने ही उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को कुछ हद तक वैधता एवं प्राधिकार प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त, राज्य की शक्ति की सीमाओं के विषय में किसी भी चर्चा को रोक दिया गया था, क्योंकि उत्तर–औपनिवेशिक काल में सुदृढ़ राज्य की आवश्यकता को व्यापक रूप से महसूस किया गया, ताकि औपनिवेशिक विरासत को उलटा जा सकें, नृजातीय विखंडन का विरोध तथा राष्ट्र निर्माण और औद्योगीकरण किया जा सकें।

औपनिवेशिक शासकों के जाने के पश्चात् सत्ता में आएं अभिजात्य वर्ग में एक दृढ़ विश्वास था कि उत्तर– औपनिवेशिक समाजों को सुधारों (रिफार्म) के मार्ग में निर्देशित करने की जरूरत थी क्योंकि वे स्वयं को विनियमित करने में असमर्थ थे। इस विश्वास ने उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को सामाजिक और आर्थिक सुधार लाने के अपने प्रयास में कुछ हद तक वैधता प्रदान की। जैसा कि हमजा अलवी ने अवलोकन किया हैः "उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को ..... एक ऐसी इकाई के बारे में सोचा जाता है जो समाज से बाहर और ऊपर खड़ी होती हैं, एक स्वायत्त एजेंसी जिसे तर्कसंगतता के एक स्वतंत्र स्रोत के साथ देखा जाता हैं.....और उसमें पूरे समाज के लिए लाभप्रद विकास कार्यक्रमों को आरम्भ और आगे बढ़ाने की क्षमता होनी चाहिए।"

9.5 आधुनिकीकरण का दृष्टिकोण : विकासशील राज्य

उदारवादी परंपरा में, राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण के विषय में समृद्ध और विविध अवधारणाएं 1950 एवं 1960 के दशक में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में आकार लेने लगी। इन सिद्धांतों के अनुसार, उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में राजनीतिक अभिजात वर्ग के पास राज्य को परिवर्तन के एक साधन के रूप में उपयोग करके आधुनिकीकरण को प्राप्त करने का वृहत कार्य था। उनका मानना था कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में राजनीतिक अभिजात वर्ग सांप्रदायिक हितों से ऊपर था और वह इससे ऊपर उठने में सक्षम था। यह मान्यता थी कि राजनीतिक अभिजात वर्ग एक पूर्वज्ञान मे संपन्न था कि सामान्यतः क्या अच्छा है और उनके कार्य अंततः राष्ट्रीय हित में होगें।

आधुनिकीकरण/राजनीतिक विकास के सिद्धांतकारों द्वारा राज्य के बारे में ऐसा दृष्टिकोण निश्चित रूप से सरल था, जिसमें संभावित एवं वास्तविक व्यवस्थाओं की एक पूरी श्रृंखला शामिल थी। यह विकास के लिए एक निश्चित अंतिम लक्ष्य अर्थात एक बहुलवादी एवं उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य मानने के अर्थ में भी उपयुक्त सिद्धांत से संबद्ध था। आधुनिकीकरण/राजनीतिक विकास के सिद्धांतकारों के लिए उत्तर–औपनिवेशिक राज्य स्पष्ट रूप से उदार एवं लोकतांत्रिक प्रकृति का था। हालांकि, आधुनिकीकरण लाने के उद्देश्य से उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को आधुनिक क्षेत्र के पक्ष में एवं पारंपरिकता के खिलाफ रहना चाहिए, चाहे इसका तात्पर्य अल्पमत का पक्ष लेना हों। इस प्रकार, वे लोग जो पारंपरिक क्षेत्रों पर निर्भर थे या जिनकी संस्कृति और समाज पारंपरिक थे, इस तर्क के द्वारा उनका उत्तर–औपनिवेशिक राज्य के द्वारा समर्थन नहीं किया जाना था। यह दावा कि यह राष्ट्रीय हित में था, अत्यधिक संदिग्ध था क्योंकि इस बात के पर्याप्त प्रमाण थे कि जो लोग राज्य तंत्र चलाते हैं यानि की अभिजात वर्ग ने उस भागीदारी से अत्यधिक व्यक्तिगत लाभ प्राप्त किया, प्रायः उन तरीकों से जिन्हें सामान्य हितों के रूप में देखा नहीं जा सकता था।

9.6 निर्भरता का परिप्रेक्ष्य : अल्पविकसित राज्य

आधुनिकीकरण/राजनीतिक विकास के परिपेक्ष्य की एक सुदृढ़ आलोचना तीसरी दुनिया के राष्ट्रवाद की शुरूआत के साथ उभरी, और दूसरी ओर नव–मार्क्सवाद के उदय के साथ पद्धति एवं वैचारिक दोनों आधार पर आलोचना हुई। इसने उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति की सोच के विषय में एक मूलभूत परिवर्तन का नेतृत्व किया। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के मार्क्सवादी सिद्धांतकारों के लेखन में परिवर्तन दिखाई दे रहा था। इस परिवर्तन का एक कारण उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की विफलता थी, जो उस समय सबसे बुनियादी विषयों को भी पूरा नहीं कर पाया, जब राज्य लोगों की आशाओं एवं आकांक्षाओं का केंद्र बिंदु था। निर्भरता के सिद्धांतकारों के लिए, उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों का अल्पविकास पूंजीवादी पश्चिम एवं एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के उपनिवेशवादी लोगों के बीच मुठभेड़ का एक उत्पाद था। उपनिवेशवाद ने अल्पविकास को जन्म दिया तथा स्वतंत्रता प्रदान करने के पश्चात् भी, आर्थिक निर्भरता के निरंतर संबंधों ने अल्पविकास के रूप में नव–उपनिवेशवाद को बनाए रखने का कार्य किया। जैसा कि अतुल कोहली और विविएन शु (1994) ने बताया है कि निर्भरता के

सिद्धांतवादी आधुनिकीकरण/राजनीतिक विकास के सिद्धांतकारों से भिन्न थे तथा उन्हें अनैतिहासिक एवं अत्यधिक औपचारिक पाया। उन्होंने आधुनिकीकरण के इस दृष्टिकोण का विरोध किया कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के राज्य 'विकास के प्रारंभिक चरण' में थे। उन्होंने आधुनिकीकरण/राजनीतिक विकास के सिद्धांतकारों की इस अर्थ में नृजातीय–केंद्रित पूर्वाग्रह रखने के लिए आलोचना की क्योंकि वे गुप्त रूप से उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों पर वर्चस्व बनाएं रखने और उनका शोषण जारी रखने के पश्चिमी एजेंडें को बौद्धिक आड़ से ढ़क रहे थे। बहरहाल, साठ के दशक तक सामाजिक परिवर्तन या आर्थिक सुधारों या राजनीतिक परिवर्तन के एक एजेंट के रूप में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को वृहत स्तर पर अमान्य मान लिया गया था। इस अमान्यता की वजह राज्य और अभिजात वर्ग की भूमिका के विषय में आम लोगों के निराशाजनक अनुभव थे।

नव–मार्क्सवादी सिद्धांत में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य पर बाहरी निर्धारकों को अत्यधिक महत्व दिया गया था, और एक पहलू पर विशेष रूप से जोर दिया गया था, वह था उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से औपनिवेशिक राज्य के संबंधों का इतिहास। निर्भरता के सिद्धांतकारों ने नव–उपनिवेशवाद को उजागर करके, पूंजीवाद एवं साम्राज्यवाद दोनों के खिलाफ प्रतिरोध की वकालत करने का निर्णय लिया।

बाहरी निर्धारकों के लिए तर्क अल्पविकास एवं निर्भरता के सिद्धांतकारों से लिए गए थे, जिनकी अगुवाई लैटिन अमेरिकी राजनीतिक अर्थशास्त्री आंद्रे गुंडर फ्रैंक ने की थी, एवं जिसमें समीर अमीन, इमैनुएल वालरस्टीन, अर्घिरी इमैनुएल और कार्डसों एवं अन्य के द्वारा संशोधन किए गए। उनका मानना था कि दुनिया में एक एकीकृत वैश्विक आर्थिक प्रणाली थी, जिसमें उन्नत पूंजीवादी देश केंद्रीय (मूल) भूमिका में थे और एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश परिधि (बाहरी सतह) पर थे। इसके पश्चात् वैश्विक आर्थिक प्रणाली के सिद्धांतकारों ने अर्ध–परिधि की एक अन्य श्रेणी को जोड़ा जिसमें एशिया के नए औद्योगिक देशों (एनआईसी) शामिल थे, (जिन्हें 'एशियन टाइगर्स' के नाम से जाना जाता है जिसमें अन्य के अलावा सिंगापुर, इंडोनेशिया, मलेशिया और ताइवान शामिल हैं)। इन निर्भरता के सिद्धांतकारों ने तर्क दिया कि पूंजीवाद एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली है जो एक एकीकृत वैश्विक बाजार के माध्यम से, तकनीकी रूप से उन्नत विकसित राज्यों और अल्पविकिसत राज्यों के द्वारा उत्पादित प्राथमिक उत्पाद के बीच आदान–प्रदान की विशेषता रखती हैं। विकसित राज्यों (जिन्हें महानगरीय राज्य भी कहा जाता हैं) की तकनीकी एवं सैन्य श्रेष्ठता के फलस्वरूप विकसित राज्य, उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों (जिन्हें परिधीय राज्यों के रूप में भी जाना जाता हैं) पर अपना वर्चस्व स्थापित कर उनका शोषण करते हैं और उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को विकृत (तोड़ना–मरोड़ना) करते हैं। विकसित राज्य असमान विनिमय की प्रक्रिया के माध्यम से आर्थिक अधिशेष को परिधीय राज्यों (अल्प–अविकसित राज्यों) से लूट लेते है, ऐसा वे अधिकाधिक मुनाफे को अपने ही देश में वापस लाकर, व्यापारिक शर्तो को बिगाड़कर अपने पक्ष में करके और विकसित राज्यों (महानगरीय) की प्रौद्योगिकी का अल्पविकसित राज्यों के द्वारा उपयोग किए जाने पर एकाधिकारी किराया लगाने के माध्यम से करते हैं। साथ–साथ वे ऐसी व्यापारिक और आयात–निर्यात की नीतियां निर्मित करते है जो अल्पविकसित राज्यों को आंतरिक बाजार पर नियंत्रण से इनकार करती हैं।

वैश्विक आर्थिक प्रणालियों में इस वर्चस्व का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि महानगरीय देशो द्वारा अधिशेष (मुनाफा, लाभ) का पूर्णतः दोहन करना हैं। असमान विनिमय परिधीय राज्यों को आर्थिक अधिशेष से वंचित करता हैं, जो उनके स्वायत्त राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक हैं। आर्थिक अधिशेष उन्नत पूंजीवादी देशों द्वारा विनियोजित एवं निवेशित किया जाता हैं। अल्पविकसित/निर्भरता के अनुसार महानगरीय राज्यों का तीव्र आर्थिक विकास एशिया और अफ्रीका जैसे आश्रित राज्यों के अल्पविकास की कीमत पर हुआ हैं।

नव–मार्क्सवादियों के लिए, उपनिवेशवाद से उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों की अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आया एवं पूर्व साम्राज्यवादी देशों से महानगरीय पूंजीपति वर्ग का अप्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभुत्व बिना किसी अवरोध के जारी रहा। इस प्रकार, नव–मार्क्सवादियों के अनुसार, उत्तर–औपनिवेशिक राज्य मात्र एक नए रूप में था, स्थानीय वर्गो के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता महज एक नया चोला (लबादा) था, जिसके तहत साम्राज्यवादी आधिपत्य के बुनियादी तंत्र कायम रहें। उत्तर–औपनिवेशिक राज्य एक आश्रित राजनीतिक तंत्र बना रहा। उत्तर–औपनिवेशिक आश्रित राज्य में शासक वर्ग/नौकरशाही ने ऐसी नीतियां निर्मित कीं जो महानगरीय/नव–साम्राज्यवादी राज्यों के दीर्घकालिक हितों से मेल खाती हैं। निर्भरता के सिद्धांत के लेखन (साहित्य) में शासक वर्ग को एक दलाल वर्ग, एक ग्राहक समूह, एक सहायक पूंजीपति वर्ग के रूप में माना जाता हैं। ए. जी. फ्रैंक के शब्दों मेंः–'पूंजी संचय की प्रक्रिया की अनिवार्यता एवं श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के फलस्वरूप, ये दुनिया भर में और अल्पविकसित देशों में राज्य की भूमिका और स्वरूप के प्रमुख निर्धारक बन जाते हैं।' निर्भरता के सिद्धांतकारों का यह भी तर्क है कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्य अपने स्थानीय पूंजीपति वर्ग के संबंध में मजबूत एवं स्वायत्त हो सकता हैं, लेकिन यह वृहत पैमाने पर महानगरीय पूंजीपति वर्ग का एक साधन बना हुआ हैं।

इस प्रकार, निर्भरता के सिद्धांतकारों का विचार था कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में प्रभुत्वशाली वर्ग का गठबंधन वैसा ही बना रहा, जैसा कि औपनिवेशिक काल में था। अन्तर केवल इतना था कि परिधीय पूंजीपति वर्ग ने अब पुराने सामंती एवं दलाल जैसे तत्वों को अधीनस्थ सहयोगी के रूप में परिवर्तित कर दिया। समीर अमीन के अनुसार यह वर्ग ताकतों के साथ सांठगांठ में सलिप्त रहता हैं।

कालांतर में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति के विषय में निर्भरता के सिद्धांतकारों के तर्क की निम्नलिखित आलोचना हुई, जिसके कारण इसका पतन हुआ।

सर्वप्रथम, जैसा कि कई नव–मार्क्सवादियों ने स्वीकार किया कि स्वतंत्रता ने सत्ता के संबंधों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का निर्माण किया, ऐसा इस अर्थ में कि इसने महानगरीय पूंजी के तत्काल हितों से नीतियों को मोड़ना संभव बना दिया। दूसरा, यहां तक कि जब महानगरीय पूंजी को आर्थिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए स्वीकार कर लिया गया था, स्वतंत्रता ने उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में स्वदेशी वर्गो को कुछ लाभ उठाने की अनुमति दी। तर्कसंगत रूप से, नीति के 'स्वतंत्र विकल्प' पर महानगरीय पूंजी की भारी उपस्थिति द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर, राज्य के निर्णय स्वतंत्र रूप से लिए गए। तीसरा, चूंकि उत्तर–औपनिवेशिक राज्य स्वदेशी वर्ग संघर्षो के संदर्भ में स्थित थे, वे अधिशेष के हस्तांतरण के लिए केवल एजेंट मात्र नहीं हो सकते थे। यह तर्क देना बहुत सरल होगा। चौथा, निर्भरता के सिद्धांतकारों के द्वारा केंद्र और परिधि के बीच असमान विनिमय संबंधों पर जोर देने के साथ, सामाजिक वर्ग भौगोलिक संस्थाओं का पर्याय बन जाते हैं तथा

असमानता एवं अभाव की समस्याएं इन संस्थाओं तक ही सीमित हो जाती हैं। इस प्रकार यह किसी भी वर्ग के व्यावहारिक विश्लेषण की संभावना को सामान्य रूप से बेहद असंभव बना देता हैं। पांचवां, जैसा कि बाद के निर्भरता के सिद्धांतकारों द्वारा इंगित किया गया, जैसा कि प्रारंभिक निर्भरता के सिद्धांतकारों का तर्क था कि वैश्विक पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में एकीकरण हमेशा उत्तर–औपनिवेशिक राज्य के नकारात्मक विकास का उत्पादन करता हैं। परंतु इसके विपरीत विश्व अर्थव्यवस्था की बाधाओं के भीतर निर्भरता सिद्धांत पर आधारित विकास संभव था जैसा कि दक्षिण पूर्व एशियाई राज्यों के संदर्भ में हुआ। छठा, हाल ही में, एक बड़े स्तर पर ये समझा गया कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में राजनीतिक सत्ताएं भी अपनी दोषपूर्ण नीतियों के कारण अल्पविकास के लिए दोषी थी।

इन आलोचनाओ के बावजूद, सर्वप्रथम निर्भरता के सिद्धांतकारों ने उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति एवं उनके विकास में कमी के कारणों के बारे में हमारी समझ को उन्नत किया है। उन्होंने पश्चिम में विकसित राज्यों और एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों के बीच महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अंतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया। दूसरा, वैश्विक आर्थिक सिद्धांतकारों ने रेखांकित किया कि कैसे प्रचलित वैश्विक आर्थिक परिस्थितियां नए मुक्त विकासशील राज्यों के लिए बाधा उत्पन्न करती हैं। तीसरा, निर्भरता के सिद्धांतकारों ने विकास के अध्ययन में राजनीतिक एवं आर्थिक चरों की परस्पर क्रिया के विश्लेषण के महत्व पर प्रकाश डाला।

जैसा कि पिछली चर्चा से पता चलता हैं कि यदि उत्तर–औपनिवेशिक राज्य का आधुनिकीकरण के विश्लेषकों के द्वारा असाधारण स्वायत्तता के साथ आंकलन किया गया, तो इसे निर्भरता/अल्पविकास के सिद्धांतकारों के द्वारा मजबूत पट्टी पर रखा गया था। यदि वर्ग आधुनिकीकरण पर लेखों में अपनी अनुपस्थिति के कारण विशिष्ट था, तो इस पर बाहरी वर्ग द्वारा नियंत्रण को निर्भरता के परिपेक्ष्य में माना जाता था। इस प्रकार, राज्य के विकास सिद्धांत मॉडल की समाप्ति एवं स्पष्टीकरण के प्रतिमान के रूप में पूर्व निर्भरता सिद्धांत के प्रभावहीन हो जाने के साथ, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में वर्ग तथा राज्य के बीच संबंधों का परीक्षण करने के लिए पर्याप्त अवसर उत्पन्न हुए।

9.7 उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य और वर्ग : सापेक्षिक स्वायत्तता पर लेख (थीसिस)

सत्तर के दशक में उभरी उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की अवधारणा हमज़ा अलावी (1972) के अत्यंत प्रभावशाली कार्य का सार था। उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य के विश्लेषण हेतु अलावी ने एक शुरूआती बिंदु प्रदान किया। उन्होंने उत्तर–औपनिवेशिक समाजों की ऐतिहासिक विशिष्टता को अपने तर्कों का आधार बनाया। उन्होंने तर्क दिया कि, यह विशिष्टता निम्न द्वारा लाए गए संरचनात्मक परिवर्तनों से उत्पन्न हुई, 1) औपनिवेशिक अनुभव एवं वर्गों के संरेखण द्वारा तथा उस संदर्भ में स्थापित राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं की अधिरचना द्वारा, तथा 2) वर्ग की शक्तियों का पुनर्गठन जो कि उत्तर–औपनिवेशिक स्थिति के संदर्भ में हुआ।

अलावी ने तर्क दिया कि, उत्तर–औपनिवेशिक राज्य स्वयं को, राजनीति की मध्यस्थता से अलग कर लेता है क्योंकि राज्य "अति–विकसित" है, एक ऐसी अधिरचना जो सभी स्वदेशी सामाजिक ताकतों पर हावी होने में सक्षम है। यह राज्य के स्वयं के पहलुओं (सैन्य

और/या नौकरशाही) को राज्य में और सामाजिक वर्गों के बीच प्रमुख भूमिका निभाने की अनुमति देता है। अलावी ने अतिविकसित अधिरचना या राज्य तंत्र की उत्पत्ति का श्रेय, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों के औपनिवेशिक अतीत को दिया, जहाँ औपनिवेशिक शासन को लागू करने की प्रक्रिया में महानगरीय राजधानी द्वारा बुर्जुआ क्रांति को अंजाम देने का कार्य किया गया था। उस प्रक्रिया में, औपनिवेशिक शासन के लिए एक राज्य तंत्र बनाना आवश्यक था जो स्वदेशी सामाजिक वर्गों को अपने अधीन करने के लिए समुचित रूप से शक्तिशाली था। यह यही 'उत्तर–औपनिवेशिक राज्य' था जो अतिविकसित राज्य तंत्र का रूप था, जो उपनिवेशवाद के बाद विरासत में मिला। अलावी इन लक्षणों को इस प्रकार संदर्भित करते हैंः "राज्य द्वारा प्राप्त नियंत्रण और विनियमन की शक्तियों का स्तर सतही पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के व्यवस्थित कामकाज को चलाने के स्तर से कहीं ज़्यादा है, जिस पर राज्य अध्यक्षता करता है और प्रत्येक प्रमुख वर्ग की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करता है। उत्तर–औपनिवेशिक समाज में राज्य की केंद्रीयता को निम्नलिखित तीन कारकों की मदद से समझाया जा सकता है।

पहला, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य तंत्र का निरंतर प्रभुत्व, वर्ग समाज के सांचे के कारण था। स्वतंत्रता के समय राज्य पर किसी एक वर्ग का विशेषाधिकार नहीं था। अलावी ने तर्क दिया कि 'सैन्य–नौकरशाही के कुलीनतंत्र की विशेष भूमिका उत्तर–औपनिवशिक समाजों में एक बहुत आम घटना बन गई है। इस भूमिका की अब, विशेषताओं वाले तीन शोषक वर्गों से संबंधित हितों के नए संरेखण के सदर्भ में व्याख्या करने की आवश्यकता है, जो महानगरीय संरक्षण में हैं, वे हैं, स्वदेशी पूंजीपति, महानगरीय नव–उपनिवेशवादी पूंजीपति वर्ग तथा ज़मीनदार वर्ग। यदि किसी उपनिवेश में एक कमजोर और अल्पविकसित स्वदेशी पूंजीपति वर्ग होता है तो, यह अति विकसित औपनिवेशिक राज्य तंत्र को अपेक्षाकृत अधीन करने में असमर्थ होगा, जिसके माध्यम से महानगरीय सत्ता ने उस पर अपना वर्चस्व कायम किया होगा। हालाँकि, तीन प्रतिस्पर्धी विशेष वर्गों के हितों का एक नया अभिसरण, महानगरीय संरक्षण के तहत, नौकरशाही–सैन्य कुलीनतंत्र को उनकी प्रतिस्पर्धा में मध्यस्थता करने की अनुमति अवश्य देता है किन्तु विरोधाभासी हितों और मांगों को नहीं।'

अल्पविकसित/निर्भरता सिद्धांतकारों के लेखन में यह कहा गया है कि, राज्यों के प्रबंधक, राजनेता जो अति–विकसित राज्य तंत्र का गठन करते हैं, जो कि संपत्तिशाली वर्गों के हितों के पक्ष में मध्यस्थता करते हैं। इस उद्देश्य हेतु, राज्य को सापेक्ष स्वायत्तता की आवश्यकता है क्योंकि प्रतिस्पर्धी हितों को परिधीय संरचना के भीतर समेटना पडता है। इस प्रकार उत्तर–औपनिवेशिक राज्य किसी एक वर्ग का साधन नहीं है। यह अपेक्षाकृत स्वायत्त है और तीन प्रमुख विशेष वर्गों के प्रतिस्पर्धी हितों के बीच मध्यस्थता करता है तथा परिधीय पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है।

दूसरा, एक अनुपूरक बिंदु जो अलावी के लेखन से लिया जा सकता है वह है कि, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक बचत के एक बहुत बड़े भाग को विनियोजित करता है तथा इसे परिधीय पूंजीवाद के तहत नौकरशाही द्वारा निर्देशित आर्थिक गतिविधियों में परिनियोजित करता है।

तीसरा, अलावी एवं जॉन शॉउल के अनुसार, एक अन्य कारक जो उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य के निर्णायक अभिप्राय को रेखांकित करता है, वह राज्य का विशिष्ट वैचारिक प्रकार्य है। शॉउल के शब्दों में : 'पूजीवादी व्यवस्था के लिए वैचारिक मज़बूती

प्रदान करने का राज्य का कार्य ऐसा कार्य है जो धीरे–धीरे मुख्य देशों में उनके आर्थिक परिवर्तन के साथ विकसित हुआ। हालाँकि, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में इस प्रकार के अधिपत्य का निर्माण करना होगा; तथा उसे क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर बनाया जाता है, जो अक्सर कृत्रिम प्रतीत होता है। एक बार प्रत्यक्ष औपनिवेशिक अधिकार के शक्तिशाली प्रभाव को हटा दिया जाए तो'। जैसे कि उन्नत पूँजीवाद, परिधीय पूँजीवाद को भी क्षेत्रीय एकता एवं वैधता की आवश्यकता पड़ती है, जिसे उत्तर–औपनिवेशिक राज्य द्वारा बनाया जाना है।

जैसा कि नव–मार्क्सवादियों का तर्क है कि उपरोक्त तीनों कारकों को एक साथ लेना उत्तर–औपनिवेशिक सामाजिक संरचनाओं के लिए राज्य की केंद्रीयता को उजागर करता है। उच्च सापेक्ष स्वायत्तता की ऐसी स्थिति में नौकरशाही, राज्य की नीतियों को निर्धारित करने के अपने अधिकार में एक आवश्यक घटक के रूप में कार्य करती है। उत्तर–औपनिवेशिक राज्य पर नव–मार्क्सवादी सिद्धांतों का ध्यान नौकरशाही/नौकरशाही कुलीनतंत्र की विशेष भूमिका पर केंद्रित रहता है क्योंकि उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य सत्ता नौकरशाही वर्ग के हाथों में होती है। यह औपनिवेशिक राज्य के सैन्य नौकरशाही तंत्र का विस्तार था, जैसा कि इसने समाज में अपनी प्रमुख शक्ति को बनाए रखा और विस्तारित किया। जॉन शॉउल ने तर्क दिया कि स्वदेशी पूँजीपति वर्ग के कमजोर स्वरूप के कारण, यह खुद को नौकरशाही के नियंत्रण में फंसा हुआ पाता है। वस्तुतः, पूर्वी अफ्रीका जैसे कुछ देशों में, स्वदेशी पूंजीपति वर्ग पूरी तरह से विकसित भी नहीं है और अपने वर्ग हितों को निरूपित नहीं कर सकता है। इस प्रकार, एक प्रमुख वर्ग का गठन करने के लिए स्वदेशी पूंजीवादिओं की स्पष्ट अक्षमता को देखते हुए, राज्य की नौकरशाही एक प्रमुख भूमिका निभाती है। ज़ीमैन तथा लैंज़ेंडोर्फर उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में नीति निर्धारण में नौकरशाही की केंद्रीय भूमिका का उल्लेख करते हैं। जब औपचारिक राजनीतिक संस्थानों को दबा दिया जाता है तो राज्य की नौकरशाही के एक वर्ग के रूप में शासन करने की अधिक संभावना होती है क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी और हित समूहों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। एक परिधीय अर्थव्यवस्था में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य के हस्तक्षेप की सीमा राज्य कर्मियों को केंद्र स्तर पर प्रेरित करती है। इसके अतिरिक्त, एक राज्य के अधिशेष के वितरण तंत्र से जुड़ा होने के कारण, ऐसा लगता है कि उनके सापेक्ष लाभ सुनिश्चित करने के लिए एक विशेष सुविधा है।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की युक्तियों के लिए इकाई के अंत में देखें।

1) उत्तर–औपनिवेशिक राज्य पर हमजा अलावी के विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

9.8 भारत में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य

उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में राज्य की प्रकृति एवं गतिशीलता के संदर्भ में कुछ सामान्य सैद्धांतिक आधार स्थापित करने के पश्चात्, आइए हम भारत में इस राज्य की प्रकृति की ओर बढ़ते हैं, यह अवलोकन करने के लिए कि भारतीय संदर्भ में अपेक्षाकृत स्वायत्त प्रसंग के विषय में उपरोक्त सूत्रीकरण कैसे लागू होता हैं।

इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयासों में से एक प्रणव बर्धन द्वारा किया गया हैं। बर्धन का तर्क है कि उत्तर–औपनिवेशिक भारतीय राज्य एक स्वायत्त कर्ता हैं, जो वर्ग शक्ति को आकार देने एवं ढालने में कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, साथ ही इसके विपरीत भी करने में सक्षम हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् के आरम्भिक दशकों में, भारत में राज्य के अभिजात वर्ग के कर्मियों ने एक स्वतंत्र अधिकार एवं प्रतिष्ठा का उपयोग किया, जिसने उन्हें भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास की प्रक्रिया में मुख्य कर्ता बना दिया। राष्ट्रीय आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए राज्य के हस्तक्षेप का उपयोग करने के बहाने से 'इसने अर्थव्यवस्था को पुनर्निर्देशित एवं पुनर्गठित किया, और इस प्रक्रिया में स्वामित्वशाली वर्गो (मालिकाना वर्गो) पर अत्यधिक दबाव डाला।' मुख्य स्वामित्वशाली वर्गो अर्थात पूंजीपति वर्ग एवं अमीर किसानों के क्रमिक सुदृढ़ीकरण के साथ, भारत में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य का स्वायत्त व्यवहार उसके विकासात्मक कार्यो के बजाय उत्तरोत्तर उसके नियामक कार्यो तक ही सीमित हो गया है। साथ ही, अफ्रीकी एवं लैटिन अमेरिकी देशों की तुलना में विदेशी पूंजी का महत्व भारत में कम हैं। भारत में स्वदेशी औद्योगिक पूंजीपति वर्ग 1991 में बाजार समर्थित आर्थिक सुधारों की नीतियों (आर्थिक उदारीकरण की नीतियों) को लागू करने के पश्चात् भी घरेलू बाजार विदेशी पूंजी से कहीं अधिक स्वायत्त हैं और उसकी शरण (आश्रय) से दूर है। दिलचस्प बात यह है कि बर्धन भारत में तीसरे स्वामित्वशाली वर्ग को संदर्भित करते है, जिसका नाम 'सार्वजनिक क्षेत्रों में पेशेवर' है। जिसमें राज्य के क्षेत्रों में सार्वजनिक नौकरशाही एवं सफेदपोश कर्मचारी शामिल हैं। भारतीय आबादी के शीर्ष बीस प्रतिशत से संबंधित तीन स्वामित्वशाली वर्गो में आपस में हितों को लेकर एक महत्वपूर्ण टकराव है, हालांकि वे सभी विकास योजना मॉडल के अंतर्गत राज्य की आर्थिक नीतियों के लाभार्थी रहे हैं। चूंकि तीनों स्वामित्वशाली वर्गो में से कोई भी एक दूसरे पर हावी नहीं होता है, यह भारत में उत्तर–औपनिवेशक राज्य की स्वायत्त शक्ति में वृद्धि करता हैं, जो एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत तीन प्रतिस्पर्धी वर्गो के बीच मध्यस्थता का महत्वपूर्ण कार्य करता है। एक से अधिक प्रभावशाली वर्गो की उपस्थिति एवं विकास योजना मॉडल के अंतर्गत राज्य नौकरशाही की भूमिका के कारण, राज्य के पक्ष में एक समान तर्क मिलता हैं (उदाहरणार्थ, सुदीप्त कविराज, 1986 देखें)।

9.9 वैश्वीकरण के युग में उत्तर–औपनिवेशिक राज्य

1990 के दशक के आरम्भ से वैश्वीकरण की त्वरित गति ने राज्य की केंद्रीय भूमिका पर निरंतर सवाल उठाया हैं। तर्क यह है कि राज्य अब आर्थिक गतिविधियों का मुख्य (या मूल) कर्ता नहीं हैं क्योंकि नव–उदारवादी आर्थिक सुधारों ने राज्य की भूमिका को कम कर दिया हैं तथा बाजार आधारित अर्थव्यवस्था स्वशासी बन गई है। इसके अलावा, विश्वबैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) द्वारा अल्पविकसित (विकासशाल देश/तीसरी

दुनिया के देश) देशों पर थोपी गई तथाकथित 'सुशासन की अवधारणा' है जिसे लागू करना इन देशों द्वारा ऋण (उधार) प्राप्त करने की बाध्यकारी शर्त हैं। राज्य द्वारा सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में किए जा रहे कार्यो से अपने को हटा लेने की मांग विश्व बैंक एवं आईएमएफ करते है। इसके अतिरिक्त वे राजनीतिक क्षेत्र में स्थानीय स्तर पर विकेंद्रीकरण की सिफारिश करते है, ऐसा सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् की दुनिया में देखा जा सकता है, जहां अंतर–सरकारी या अतिराष्ट्रीयता के स्तर पर किए गए निर्णयों का कार्यक्षेत्र एवं महत्व बढ़ गया हैं। एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के राज्यों में केंद्रीकृत नियोजित अर्थव्यवस्था मॉडल से बाजार पर आधारित अर्थव्यवस्था मॉडल की ओर जाने से हुए आर्थिक परिवर्तनों ने वैश्विक कॉर्पोरेट क्षेत्र को राष्ट्र राज्यों की अपेक्षा ज्यादा स्वायत्तता प्रदान की और वैश्विक आर्थिक प्रणाली पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला हैं। चूंकि ये अंतरराष्ट्रीय कंपनियां उन्नत पूंजीवादी देशों के पूंजीपति वर्ग पर आधारित है और उन्ही के स्वामित्व में है, अतः इन राज्यों का विकासशील राज्यों पर स्पष्ट प्रभाव रहता है (हेवुड, 2013)।

बोध प्रश्न 2

नोटः– i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की जांच करें।

1) सापेक्ष स्वायत्तता की अवधारणा से आप क्या समझते है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.10 सारांश

एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के राज्यों में राजनीतिक सामंजस्य और आर्थिक गतिशीलता की कमी थी, जिसने उन्हें पश्चिम के साम्राज्यवादी राज्यों को अपना उपनिवेश बनाने में सक्षम बनाया। जैसा कि निर्भरता के सिद्धांतकारों का तर्क है कि यह 'ऐतिहासिक रूप से उनके विशिष्ट सामाजिक एवं राजनीतिक लक्षणों में निहित था.....भंगुर राज्य (टूटने योग्य राज्य) संरचनाएं अति–केंद्रीयकृत या खंडित थीं, और गैर उत्पादक समूहों द्वारा आर्थिक संसाधनों का नियंत्रण' (कोहली 1986)।

औपनिवेशिक प्रभुत्व के दौरान, एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के राज्यों मे गैर–उत्पादक प्रमुख वर्गो का एकीकरण तथा एक केंद्रीकृत राज्य संरचना निर्मित की गई, जिससे उचित आर्थिक अधिशेष और व्यवस्था बनाई रखी जा सके। अधिशेष का उपयोग साम्राज्यवादी राज्यों द्वारा गैर–विकासात्मक उद्देश्यों से लेकर व्यवस्था बनाए रखने के लिए एवं उनके साम्राज्यवादी हितों और प्रत्यक्ष विनियोग के लिए किया गया था। इन सभी कारकों ने उपनिवेशों की आर्थिक अल्पविकासशीलता में योगदान दिया। जैसा कि कोहली

ने समीक्षा की हैः 'उपनिवेशवाद ने विरासत के रूप में जुड़वा ऐतिहासिक विरासत को दिया, जो इस प्रकार हैं :–एक ओर सामाजिक –संरचनात्मक गतिशीलता का अभाव, तथा दूसरी ओर राजनीतिक ताकतों के उदय का उद्देश्य न केवल संप्रभु राज्यों का निर्माण था, बल्कि इस गतिशीलता की अनुपस्थिति को दूर करना भी था' (कोहली 1986)।

एशियाई, अफ्रीकी एवं लैटिन अमेरिकी देशों को अतिविकसित औपनिवेशिक राज्य तंत्र एवं संस्थागत प्रथाएं विरासत में मिलीं, जिसके माध्यम से इन आश्रित/परिधीय राज्यों में स्वदेशी सामाजिक वर्गो का संचालन और नियंत्रण साम्राज्यवादी राज्यों द्वारा किया जाता था। इन आयामों ने राज्य को प्रभुत्वशाली भूमिका का निर्वहन करने की अनुमति दी। अतः उत्तर–औपनिवेशिक समाज में कोई भी स्वदेशी संपत्तिशाली वर्ग अर्थात स्वदेशी पूंजीपति वर्ग या भूमि संपन्न अमीर किसान वर्ग, उत्तर–औपनिवेशिक समाजों के अंतर्गत राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं था। जहां तक साम्राज्यवादी राज्यों में स्थित महानगरीय पूंजीपति वर्ग की बात हैं, तो इस वर्ग का परिधीय राज्यों के भीतर सापेक्षिक आर्थिक प्रभुत्व था। हालांकि स्वतंत्रता ने इस वर्ग को शासक वर्ग की भूमिका पर कब्जा करने से रोक दिया क्योंकि इसे औपचारिक रूप से दल/पार्टी की राजनीति से बाहर रखा गया था। ऐसे में कमजोर सामाजिक वर्गो ने स्वयं को नौकरशाही के चंगुल में फंसा पाया। उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति पर नव–मार्क्सवादी साहित्य में चल रहा तर्क यह रहा है कि राज्य को स्वायत्तता प्राप्त होने का मुख्य कारण कमजोर स्वदेशी संपत्तिशाली वर्ग हैं।

नागरिक समाज में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने और आधुनिकीकरण या विकास प्राप्त करने की जरूरत महसूस की गई, जिससे उत्तर–औपनिवेशिक राज्य में अधिकारियों को समाज के सभी क्षेत्रों में केंद्रीय भूमिका निभाने की अनुमति दी गई। जैसा कि आरम्भ में चर्चा की गई थी कि उदारवादी दृष्टिकोण ने भी उत्तर–औपनिवेशिक राज्य को राज्य के आधुनिकीकरण के रूप में एक केंद्रीय भूमिका निभाने के रूप में देखा। पश्चिम से शिक्षा प्राप्त आधुनिक राजनीतिक अभिजात वर्ग की अगुवाई में, उन्हें विकसित पश्चिमी देशों के विकास पथ का अनुसरण करने का कार्य सौंपा गया था। हालांकि, वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने उत्तर–औपनिवेशिक राज्य की भूमिका एवं महत्व में गुणात्मक परिवर्तन किए हैं, जिससे वे एक बार पुनः वृद्धिशील तरीके से अंतरराष्ट्रीय पूंजी के प्रभाव तले आ गए हैं।

9.11 सदर्भ

अलावी, हमज़ा. (1972). 'द स्टेट इन पोस्ट–कोलोनिअल सोसाइटीज़ : पाकिस्तान एंड बांग्लादेश'. न्यू लेफ्ट रिव्यू. 1(74) : 59–81, जुलाई–अगस्त.

बर्धान, प्रणब. (1984). द पॉलिटिकल इकोनोमी ऑफ डेव्लपमेंट इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड एंड न्यूयार्क : बैसिल ब्लैकवेल.

बैरी, एन.पी. (1989). एन इंट्रोडक्शन टू मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी. लंडन : पॉलग्रेव मैकमिलन.

कारामनी, डैनियल. (2014). कम्पैरेटिव पॉलिटिक्स. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटि प्रेस.

कार्नोय, मार्टिन. (1984). द स्टेट एंड पॉलिटिकल थ्योरी. प्रिंसटन : प्रिंसटन युनिवर्सिटि प्रेस.

चंढ़ोक, नीरा. (1992).' एक्सपैंडिंग द मार्क्सिअन नोशन ऑफ पोस्ट–कोलोनिअल स्टेट'. सोशल साइंटिस्ट. 10(9–10).

फ्रैंक, आंद्रे गुंडर. (1967). कैपिटलिज़म एंड अंडरडैव्लपमेंट इन लैटिन अमेरिका : हिस्टोरिकल स्टडीज़ ऑफ चिली एंड ब्राज़ील. मंथली रिव्यू प्रेस.

हैल्ड, डेविड. (1990). पॉलिटिकल थ्योरी एंड द मॉडर्न स्टेट : एस्सेयज़ ऑन स्टेट, पॉवर एंड डेमोक्रेसी. कैम्ब्रिज : पोलिटी प्रेस.

ह्येवुड, एंड्रियु. (2013). पॉलिटिक्स्. लंडनः पॉलग्रेव मैकमिलन.

कविराज, सुदिप्ता. (1986). 'इंदिरा गांधी एंड इंडियन पॉलिटिक्स', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 21(38–39).

मिगदल, जोएल सैम्युल, अतुल कोहली, विविने शू. (1994). (एड.). स्टेट पॉवर एंड सांशल फोर्सिज़ : डोमिनेशन एंड ट्रांसफोर्मेशन इन द थर्ड व्र्लड. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज युनिवर्सिटि प्रेस.

मिलीबंद, रैल्फ (1978) मार्क्सिज़िम एड पॉलिटिक्स. ऑक्सफोर्ड : आक्सफोर्ड युनिवर्सिटि प्रेस.

शाऊल, जॉन. (1974) 'द स्टेट इन पोस्ट–कोलोनिअल सोसाइटीज़ : तंज़ानिया', द जर्नल ऑफ मॉडर्न अफ्रीकन स्टडीज़. 17(4) : 531–52.

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) हमजा अलवी अपने अग्रणी कार्य 'द स्टेट इन पोस्ट–कोलोनियल सोसाइटीज़' में बताते हैं कि उत्तर–औपनिवेशिक राज्य तंत्र का आधार औपनिवेशिक युग में मौजूद वर्गो में निहित हैं। औपनिवेशिक राज्य मशीनरी का सभी कार्य मूल वर्गो जैसे स्वदेशी बुर्जुआ वर्ग, महानगरीय नव–उपनिवेशवादी पूंजीपति वर्ग एवं जमींदार वर्ग को अपने अधीन करना था। यह इनमें से किसी भी वर्ग पर टिकी नहीं थी, तथा इसके विपरीत औपनिवेशिक सत्ता ने मजबूत सशस्त्र बलों और एक सुदृढ़ नौकरशाही प्रणाली के साथ एक परिष्कृत शक्तिशाली व्यवस्था की स्थापना की। उनका तर्क है कि नौकरशाही समाज के दिन–प्रतिदिन के मुद्दो को संबोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

बोध प्रश्न 2

1) राज्य का सापेक्ष स्वायत्तता सिद्धांत राज्य की मार्क्सवादी समझ पर आधारित हैं। यह मानता है कि पूंजीवादी समाज को बनाए रखने और स्थिर करने में राज्य एक सीमित स्वायत्त भूमिका का निर्वहन करता हैं। निकोस पौलंत्ज़स ने तर्क दिया कि

राज्य हालांकि पूंजीपति वर्ग से अपेक्षाकृत स्वायत्त हैं, फिर भी पूंजीपति वर्ग के हितों की रक्षा के लिए कार्य करता हैं। पौलंत्ज़स विवरण देते हैं कि पूंजीवादी राज्य सीधे पूंजीपति वर्ग के हितों एवं वर्चस्व और शोषण की स्थितियों को सहायता प्रदान करता हैं। ग्राम्सी की सांस्कृतिक आधिपत्य की अवधारणा के आधार पर, पौलंत्ज़स का तर्क है कि दमन एवं वर्चस्व ही केवल राज्य के कार्य नहीं हैं, यह उत्पीड़ितों की सहमति भी प्राप्त करता हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई–10 बहुलवाद, राष्ट्र और राज्य*

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राज्य

10.3 नृजातीयता और राज्य

10.4 अलगाववादी आंदोलनों में उभार

10.5 राष्ट्रवाद केदृष्टिकोण

10.6 एक राष्ट्र–राज्य को बहुलवाद की आवश्यकता क्यों है?

10.7 अल्पसंख्यक और राष्ट्र–राज्य

10.8 बहुलवाद को क्रियान्वित करने की क्रियाविधि

10.9 बहुलवाद के संचालन में चुनौतियां

10.10 भारत में बहुलवाद

10.11 सारांश

10.12 शब्दावली

10.13 संदर्भ

10.14 बोध प्रश्न बोध के उत्तर

10.0 उद्देश्य

लगभग सभी आधुनिक राज्यों के बहु–नृजातीय होने के कारण, राज्य की अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए नृजातीय संघर्ष को नियंत्रित करना एक चुनौती बन गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप इस योग्य हो जाएंगेः

- राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राज्य की अवधारणाओं की व्याख्या करें;
- नृजातीयता, राष्ट्र और राज्य के बीच संबंधों की पहचान करें;
- एक राज्य के भीतर नृजातीय विविधता से निपटने में बहुलवाद के महत्व का वर्णन करें; तथा
- बहुलवाद के संचालन के तंत्र और चुनौतियों का विश्लेषण करें।

* डॉ. नेहा किशोर, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान संकाय, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

10.1 परिचय

आज अधिकांश राज्य विषमरूप हैं। नृजातीय समूहों और क्षेत्रों के बीच साफ संयोग शायद ही कभी वास्तविकता हो और इसलिए किसी राष्ट्र का सीमांकन करना एक कठिन काम है। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप जैसे पश्चिमी उदार लोकतंत्रों में नृजातीय विविधता उपनिवेश, बसावट, आप्रवास, दासता और स्वदेशी लोगों की उपस्थिति का एक संयुक्त परिणाम है। अफ्रीका और एशिया के उत्तर–औपनिवेशिक राज्यों में, नृजातीय विविधता का एक प्रमुख कारण नृजातीय समूहों के वास्तविक वितरण के बजाय औपनिवेशिक भू–राजनीति को ध्यान में रखते हुए औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा उनकी क्षेत्रीय सीमाओं का बनाना है। एक राष्ट्र–राज्य अपनी एकता को अस्थिर किए बिना कितनी नृजातीय विविधता को समायोजित कर सकता है यह एक लंबे समय से चला आ रहा प्रश्न है। नृजातीय विविधता कभी–कभी विभिन्न कारकों के कारण अंतर–नृजातीय हिंसा में परिणत होती है जैसे कि एक नृजातीय समूह का दूसरों पर वर्चस्व और इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता हो सकती है। राज्यों के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए नृजातीय संघर्ष को विनियमित करना आवश्यक हो जाता है कि बहु–नृजातीय वास्तविकता बहु–राष्ट्रीय परिदृश्य में विकसित न हो।

हाल के दशकों में कथित रूप से आधुनिक पश्चिम में पुराने, सुस्थापित राष्ट्र–राज्यों में एक नए राष्ट्रवाद का उदय हुआ है। कुछ उल्लेखनीय उदाहरण स्कॉटलैंड, वेल्स और यूनाइटेड किंगडम में ब्रेक्सिट, स्पेन में कैटेलोनिया और बास्क और कनाडा में क्यूबेक द्वारा प्रतिपादित अप्रवासी विरोधी भावनाएं हैं। इन उभारों के मूल में असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास है। ये घटनाक्रम सच्चे राष्ट्रवाद के बजाय बढ़ते क्षेत्रवाद को दर्शाते हैं। हालाँकि, उन्हें वैश्वीकरण से जुड़े राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रति रक्षात्मक प्रतिक्रिया के परिणामों के रूप में भी देखा जा सकता है। बहरहाल, इस तरह के उतार–चढ़ाव सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक पहचानों पर आधारित होते हैं, जिससे राष्ट्रीय पहचान के नृजातीय घटक को उनके राजनीतिक एजेंडे के साथ मिला दिया जाता है।

10.2 राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राज्य

'राष्ट्र' एक गहन रूप से विवादित शब्द है। कुछ विद्वान इसे सामान्य इतिहास, धर्म, भाषा, क्षेत्र और नृजातीयता जैसे उद्देश्य तत्वों के आधार पर परिभाषित करते हैं। "एक राष्ट्र एक ऐतिहासिक रूप से गठित, लोगों का स्थिर समुदाय है", जोसेफ स्टालिन ने लिखा, "एक आम संस्कृति में प्रकट एक आम भाषा, क्षेत्र, आर्थिक जीवन और मनोवैज्ञानिक मेकअप के आधार पर गठित" (जैसा कि फ्रैंकलिन, 1973 में उद्धृत;पृ. 57)। विद्वानों का एक अन्य समूह इसे भावनाओं, आत्म–जागरूकता, सामान्य इच्छा, वफादारी और एकजुटता जैसे व्यक्तिपरक तत्वों के आधार पर परिभाषित करता है। मैक्स वेबर के अनुसार, "एक राष्ट्र भावनाओं का एक समुदाय है जो अपनी स्थिति में पर्याप्त रूप से खुद को प्रकट कर सकता है" (1994, पृष्ठ 25)। फिर भी अन्य, जैसे जेम्स केलास और येल तामीर, मानते हैं कि राष्ट्र बनने के लिए लोगों के समूह में वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक दोनों तत्व होने चाहिए। जैसा कि केल्लास ने बताया है "राष्ट्रों में 'वस्तुनिष्ठ' विशेषताएं होती हैं जिनमें एक क्षेत्र, एक भाषा, एक धर्म या सामान्य वंश शामिल हो सकता है ..., और 'व्यक्तिपरक' विशेषताएं, विशेष रूप से लोगों की अपनी राष्ट्रीयता और इसके लिए स्नेह की जागरूकता" (1998, पृ. 3)। इन वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक परिभाषाओं से, यह स्पष्ट है कि राष्ट्र को परिभाषित करने के बारे में विद्वानों की बहस में कोई सहमति नहीं है। एक वैचारिक उपकरण के रूप में, हम एक राष्ट्र को ऐसे लोगों के समूह के रूप में परिभाषित करते हैं जो कुछ विशेषताओं को साझा करते हैं जो उन्हें दूसरों से अलग करने के लिए बाध्य होते हैं और जो किसी प्रकार

की राजनीतिक स्वायत्तता या संप्रभु क्षेत्र पर आत्मनिर्णय में एक आम विश्वास साझा करते हैं। कुछ हद तक, यह परिभाषा एंथनी स्मिथ की एक राष्ट्र की अवधारणा से मिलती–जुलती है, "एक नामित मानव आबादी जो एक आम क्षेत्र, ऐतिहासिक मिथकों और ऐतिहासिक यादों को साझा करती है, एक सामूहिक सार्वजनिक संस्कृति, एक आम अर्थव्यवस्था और सभी सदस्यों के लिए सामान्य कानूनी अधिकार और कर्तव्य" (जैसा कि हर्न, 2006, पृष्ठ 37 में उद्धृत)। राष्ट्र की अवधारणा की तरह, राष्ट्रवाद भी एक विवादित शब्द है। गेलनर, हेचटर, ब्रेइली और मार्गरेट मूर जैसे विद्वानों के एक समूह का तर्क है कि राष्ट्रवाद एक विशुद्ध रूप से राजनीतिक घटना है, जबकि अन्य, जैसे तामीर, कॉनर, किमलिका, पारेख और टेलर, इसे एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिभाषित करते हैं। राजनीति/संस्कृति द्विभाजन द्वारा निर्मित भ्रम से बचने के लिए, हम राष्ट्रवाद को एक मौजूदा राज्य के भीतर राजनीतिक आत्मनिर्णय या अधिकतम स्वायत्तता के इच्छुक राष्ट्रीय समूह के साथ जागरूक पहचान और एकजुटता के रूप में परिभाषित करते हैं। जैसा कि मोंटसेराट गुइबरनौ ने कहा है कि "राष्ट्रवाद से मेरा तात्पर्य एक ऐसे समुदाय से संबंधित होने की भावना से है जिसके सदस्य प्रतीकों, विश्वासों और जीवन के तरीकों के एक समूह के साथ पहचान रखते हैं और अपने सामान्य राजनीतिक भाग्य पर निर्णय लेने की इच्छा रखते हैं" (1996, पृष्ठ 47))

राष्ट्र शब्द का प्रयोग अक्सर राज्य के पर्याय के रूप में किया जाता है। हालाँकि, दोनों अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। राज्य एक कानूनी अवधारणा है जो कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय सीमा के भीतर एक मान्यता प्राप्त प्राधिकरण की उपस्थिति का वर्णन करता है जिस पर वह कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त संस्थानों के माध्यम से संप्रभुता का प्रयोग करता है। स्टीवन ग्रोस्बी (2005) ने एक राज्य को 'एक संरचना के रूप में परिभाषित किया है, जो संस्थानों के माध्यम से, उस क्षेत्र के भीतर व्यक्तियों को राज्य के सदस्यों के रूप में एक दूसरे से संबंधित कानूनों का उपयोग करके एक क्षेत्र पर संप्रभुता का प्रयोग करता है'" (पृष्ठ 22)। एक राष्ट्र इस अर्थ में एक राज्य नहीं है कि इसमें राज्य की संस्थागत पूर्वापेक्षाएँ नहीं हैं, जैसे कि सरकार, संप्रभुता और एक राजनीति। इसके अलावा, राज्य एक कानूनी और राजनीतिक संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसका अर्थ है कि वे कानून द्वारा निर्दिष्ट सदस्यता के साथ अधिक अवैयक्तिक कानूनी संरचनाएं हैं। दूसरी ओर, राष्ट्र सामाजिक संबंधों के एक भावुक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसका अर्थ है कि वे अधिक व्यक्तिगत, भावनात्मक, सांस्कृतिक रूप से उन्मुख हैं। एक राष्ट्र और एक राज्य के बीच यह अंतर दर्शाता है कि एक ही राज्य के भीतर कई अलग–अलग राष्ट्र हो सकते हैं और राज्य के अभाव में राष्ट्र अस्तित्व में रह सकते हैं।

यद्यपि राज्य और राष्ट्र एक दूसरे से भिन्न हैं, फिर भी दोनों के बीच एक जटिल संबंध है। अपनी संप्रभुता के अभ्यास के माध्यम से, राज्य एक राष्ट्र बनाता है, जिसका अर्थ है कि एक राज्य से एक राष्ट्रीय समुदाय उत्पन्न होता है। लेकिन, राज्य को वैधता हासिल करने और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए, राष्ट्रीय समुदाय या समुदायों के सांस्कृतिक तत्वों से अपील करने और उन्हें कानूनी मान्यता देने की आवश्यकता है। राज्य, इस मामले में, राष्ट्रीय समुदाय से उत्पन्न होता है। एस. ग्रॉस्बी (2005) लिखते हैं, "यह ज्ञात करना कि राष्ट्र राज्य बनाता है या राज्य राष्ट्र बनाता है, यह इस संदर्भ में राष्ट्र पर निर्भर करता है, तथा इसमें दोनों जटिल प्रक्रियाएं शामिल हैं" (पृष्ठ 26)। बहुराष्ट्रीय राज्यों में, संस्कृति और राजनीति के बीच कुछ हद तक तनाव अपरिहार्य हो जाता है जब बहुसंख्यक सांस्कृतिक समूह राज्य को अपने विशेष नृजातीय समूह के राज्य के रूप में देखता है, और राज्य अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समूहों के खिलाफ पक्षपाती रहता है। इस स्थिति में, अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समूह अलग–थलग महसूस करते हैं, विभिन्न राजनीतिक लक्ष्यों के साथ राष्ट्रवादी आंदोलनों का उदय होता है, जिसमें हस्तांतरण और स्वायत्तता से लेकर अलगाव और अलग राज्य का दर्जा शामिल है। राजनीतिक अस्थिरता और राज्य के विभाजन की

समस्या को टालने के लिए, राज्यों को सांस्कृतिक समूहों के लिए मान्यता के बीच संतुलन बनाना चाहिए, जबकि राज्य में एकता और स्थिरता बनाए रखने के लिए एक व्यापक उदार राजनीतिक ढांचे को बनाए रखना चाहिए।

10.3 नृजातीयता और राज्य

नृजातीयता एक सीमित पहचान है जो सामान्य वंश की धारणा पर आधारित है और अंतर्विवाह के अभ्यास के माध्यम से कायम है। यह भाषा, धर्म, रीति–रिवाजों और नस्ल जैसी सामान्य सामाजिक विशेषताओं पर आधारित है। एंड्रयू विंसेंट (2010) के अनुसार, "नृजातीयता आमतौर पर रिश्तेदारी जैसे जन्मजात कारकों को संदर्भित करती है, जिन्हें ज्यादातर जैविक या आनुवंशिक शब्दों में समझा जाता है। नृजातीय समूहों को आमतौर पर छोटे, अधिक व्यापक, उनकी सदस्यता में अनन्य और राष्ट्रों की तुलना में पुराने माना जाता है"(पृ.228)। एक राष्ट्र, अवधारणात्मक रूप से, एक नृजातीय समूह नहीं है, लेकिन यह उससे कहीं अधिक है कि एक नृजातीय समूह एक राजनीतिक के बजाय एक सामूहिक सांस्कृतिक पहचान से परिभाषित होता है। दूसरे शब्दों में, एक नृजातीय समुदाय आमतौर पर अलग राज्य का दर्जा नहीं चाहता है, बल्कि आम तौर पर मौजूदा राज्य के भीतर अल्पसंख्यक अधिकारों की मान्यता और संरक्षण को स्वीकार करने के लिए संतुष्ट है। जब यह किसी मौजूदा राज्य के भीतर स्वतंत्रता (अलग राज्य का दर्जा) या अधिकतम स्वायत्तता के लिए राजनीतिक आकांक्षाओं को विकसित करता है, तो इसे एक राष्ट्र के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और राष्ट्रवाद के उदय का आधार बन सकता है। एक अलग तमिल ईलम राज्य के लिए श्रीलंकाईनृजातीय समूह, तमिलों की मांग राष्ट्रवाद में परिवर्तन का एक उदाहरण है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में, यह व्यापक रूप से माना जाता था कि राज्य के साथ पहचान के पक्ष में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ नृजातीय पहचान अपना महत्व खो देगी। हालांकि, 1960 के दशक के बाद से, आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास के सभी स्तरों पर राज्यों ने नृजातीय चेतना और संघर्षों में वृद्धि देखी है। वॉकर कॉनर (2000, 27) के अनुसार, संचार और परिवहन में वृद्धि ने एक समूह और अन्य के बीच अंतर के बारे में सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ाने और समान नृजातीय पहचान वाले लोगों के बारे में जागरूकता बढ़ाने की ओर अग्रसर किया है। दूसरे शब्दों में, अंतर–नृजातीय और अंतरा–नृजातीय संचार ने नृजातीय चेतना पैदा की है और नृजातीय संघर्ष को बढ़ा दिया है। एक राजनीतिक ताकत के रूप में नृजातीय चेतना का उदय राज्य की सीमाओं के लिए एक चुनौती है।

थॉमस एरिक्सन एक राज्य के भीतर नृजातीय समूहों की उपस्थिति को निम्नलिखित तरीकों से वर्गीकृत करता हैः (i) शहरी नृजातीय अल्पसंख्यक जिससे बेहतर आर्थिक अवसरों के लिए आप्रवासन विभिन्न नृजातीय समूहों के लोगों को एक ही शहरी स्थान में लाता है, (ii) औपनिवेशिक राज्यों के बाद के नृजातीय समूह जिसमें औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा खींची गई राज्य की सीमाओं ने एक नृजातीय रूप से विभाजित नागरिकता बनाई है, (iii) मूल निवासी लोग जिनकी पहचान राष्ट्र–राज्यों के भीतर अंतर्निहित और बनाए रखी गई है, और (iv)प्रोटो–राष्ट्र जो राजनीतिक रूप से संगठित हैं राष्ट्र–राज्य की सक्रिय खोज में (जैसा कि हर्न, 2006, पृष्ठ 8 में उद्धृत किया गया है)। इन समूहों के बीच अंतर–नृजातीय प्रतिस्पर्धा और सहयोग है जो उनके सापेक्ष आकार और ताकत के आधार पर भिन्न होता है। राज्य संरचनाओं में अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता की पहचान के लिए समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा और राज्य या प्रमुख नृजातीय समूह के प्रति उनका प्रतिरोध नृजातीय पहचान को तेज करता है। इस तरह की नृजातीय राजनीति राष्ट्रवाद में तब पनपती है जब नृजातीय समूहों की मांग किसी क्षेत्र में कुछ हद तक स्वशासन हासिल

करने या अधिकार क्षेत्र के दावे तक पहुंच जाती है। हर्न (2006, पृष्ठ 11) के लिए, "राष्ट्रवाद एक आबादी की ओर से, पहचान के लिए, अधिकार क्षेत्र और क्षेत्र के लिए संयुक्त दावों का निर्माण है"। पहचान के दावे में धार्मिक विश्वास, भाषा, सामान्य इतिहास या सामान्य वंश जैसे सांस्कृतिक कारकों की मान्यता की मांग शामिल हो सकती है। अधिकार क्षेत्र का दावा कानून बनाने की शक्ति की मांग करता है। क्षेत्र का दावा उस भूमि पर अधिकारों की मांग करता है जिस पर राष्ट्रीय समूह ने ऐतिहासिक रूप से कब्जा किया है।

नृजातीय और राजनीतिक सीमाएँ अक्सर मेल नहीं खातीं। 1972 में लिखते हुए, कॉनर निम्नलिखित आँकड़ों की ओर इशारा करते हैं: तत्कालीन मौजूदा 132 राज्यों में से केवल 12 को नृजातीयता (2000, पृष्ठ 26) के संदर्भ में सनृजातीय के रूप में वर्णित किया जा सकता है। सभी राज्यों के 29.5 प्रतिशत में, सबसे बड़ा नृजातीय समूह राज्य की आबादी का आधा भी नहीं था। एक राज्य के भीतर नृजातीय समूहों की संख्या सैकड़ों में हो सकती है, जिससे नृजातीय विविधता और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। कनाडा, पूर्व यूगोस्लाविया, अफ्रीकी राज्यों जैसे इथियोपिया, गुयाना, केन्या, नाइजीरिया और सूडान जैसे बहु–नृजातीय राज्यों के अनुभव के अनुसार नृजातीय विविधता राष्ट्र–निर्माण के लिए एक चुनौती बन गई है। यदि किसी राज्य में विभिन्न सांस्कृतिक समूहों को कानूनी रूप से मान्यता नहीं दी जाती है तो नृजातीय चेतना बहु–नृजातीय राज्यों में राजनीतिक एकीकरण में बाधा बन सकती है।

10.4 अलगाववादी आंदोलनों में उभार

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से, दुनिया ने राज्यों के भीतर कईनृजातीय संघर्ष देखे हैं, जिनमें नृजातीय सफाई के कई उदाहरण हैं। बोस्निया और रवांडा जैसे देशों में नृजातीय नरसंहार हिंसा की उस डिग्री को दर्शाता है जिसे नृजातीयता के नाम पर कायम रखा जा सकता है।

रवांडा में नरसंहार

रवांडा में हुटु और तुत्सी दो नृजातीय समूह हैं। जब 1962 में रवांडा ने औपनिवेशिक सत्ता से स्वतंत्रता प्राप्त की, तो सत्ता को हुटु से बनी सरकार को सौंप दिया जाना था, जिसमें अधिकांश आबादी शामिल है। हालांकि, अल्पसंख्यक तुत्सी समूह ने इसका विरोध किया था जो औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा अनुकूल व्यवहार के कारण शक्तिशाली पदों पर बने रहना चाहते थे। 1994 में, हुटु लोगों ने तीन महीनों में तुत्सी समुदाय के 800,000 लोगों और उदारवादी हुटु की हत्या कर दी।

राष्ट्रों के आत्मनिर्णय का सिद्धांत यह मानता है कि किसी भी आत्म–विभेदकारी समूह को स्वयं शासन का अधिकार है, यदि वह ऐसा चाहता है। इस सिद्धांत ने नृजातीय आंदोलनों के लिए उत्प्रेरक का काम किया है। एक अन्य तत्व जो नृजातीय अलगाववाद में उभार में योगदान देता है, वह है वैश्विक राजनीतिक वातावरण में परिवर्तन जिसमें यह बहुत कम संभावना है कि एक छोटे राज्य को एक बड़े राज्य द्वारा हड़प लिया जाएगा। छोटी इकाइयों के लिए स्वतंत्रता एक आकर्षक विकल्प के रूप में प्रकट होती है। अलगाववादियों को अलग राज्य की अपनी मांग को इस आधार पर छोड़ने के लिए मनाना मुश्किल है कि परिकल्पित राष्ट्र–राज्य बहुत छोटा होने के कारण आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं हो सकता है। यह कश्मीर और वेल्स जैसे उदाहरणों से अच्छी तरह से प्रदर्शित होता है। नृजातीय राष्ट्रवाद की भावनात्मक अपील ऐसे आर्थिक विचारों को खत्म कर सकती है।

अलगाव की मांग को अक्सर असमान आर्थिक विकास के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। हालांकि, वास्तविक अर्थों में और राज्य की आबादी के अन्य वर्गों के सापेक्ष आर्थिक समृद्धि एक नृजातीय अल्पसंख्यक को अलगाव की मांग करने से नहीं रोकती है। स्पेन में बास्क और कैटलन के मामले बताते हैं कि आर्थिक रूप से अधिक उन्नत समूह भी अलगाववादी आंदोलन शुरू कर सकते हैं। इसके अलावा, 1960 के दशक के बाद से स्कॉटिश और वेल्श राष्ट्रवाद के उभार से पता चलता है कि सदियों का उत्संस्करण और समावेशीकरण उलटफेर से गुजर सकता है, और राज्य के इतिहास में किसी भी समय अलगाववाद की मांग उभर सकती है।

स्कॉटिश राष्ट्रवाद

स्कॉटलैंड यूनाइटेड किंगडम के भीतर एक देश है। स्कॉटलैंड में स्वशासन के एक बड़े स्तर के लिए दशकों के दबाव के बाद, 1997 में, स्कॉटिश लोगों ने स्कॉटलैंड के घरेलू मामलों पर कानून बनाने के लिए स्कॉटिश संसद की स्थापना के लिए एक मजबूत बहुमत से जनमत संग्रह में मतदान किया। स्कॉटिश संसद 1999 में खोली गई थी। जबकि कुछ वर्ग चाहते हैं कि स्कॉटलैंड की स्वशासी शक्तियां बढ़ें, अन्य चाहते हैं कि स्कॉटलैंड एक स्वतंत्र राष्ट्र–राज्य बने। स्कॉटिश संसद ने 2013 में स्कॉटिश स्वतंत्रता जनमत संग्रह पारित किया। यूनाइटेड किंगडम से स्कॉटिश स्वतंत्रता पर एक जनमत संग्रह 2014 में हुआ था। 55.3 प्रतिशत मतदाताओं ने स्वतंत्रता के खिलाफ मतदान किया, जबकि 44.7 प्रतिशत ने स्वतंत्रता के पक्ष में मतदान किया।

बोध प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए मॉडल उत्तर से अपने उत्तर की जाँच करें।

1) राज्य और राष्ट्र के बीच मूलभूत अंतर क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

2) वाकर कॉनर के अनुसार नृजातीय चेतना और संघर्षों का कारण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण

राष्ट्र और राष्ट्रवाद के लिए तीन प्रमुख दृष्टिकोण हैं। आदिमवादी दृष्टिकोण राष्ट्र और राष्ट्रवाद को अनादि काल से अस्तित्व में देखता है। दूसरे शब्दों में, यह मानता है कि राष्ट्रों और राष्ट्रवाद की जड़ें मानव साहचर्य जीवन में गहरी हैं। यह नृजातीयता को समूहों की एक प्राचीन विशेषता के रूप में लेता है और धर्म, नृजातीयता, नस्ल, भाषा और क्षेत्र

की श्रेणियों को दिए गए मौलिक आयोजन सिद्धांतों और मानव संघ के बंधनों के रूप में मानता है। इस धारणा के आधार पर, आदिमवादियों का तर्क है कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद जो इन मौलिक संबंधों का विस्तार हैं, चिरस्थायी और प्राकृतिक हैं, आधुनिक नहीं। पियरे वैन डेन बर्घे, एडवर्ड शिल्स और क्लिफोर्ड गीट्ज़ आदिमवादी दृष्टिकोण के मुख्य पैरोकार हैं।

आधुनिकतावादी दृष्टिकोण आदिमवाद की आलोचना के रूप में उभरा है। आधुनिकतावादी, आदिमवाद के विपरीत, यह मानते हैं कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष परिणाम हैं, जैसे कि औद्योगीकरण या पूंजीवाद, प्रशासन का युक्तिकरण, संस्कृति का धर्मनिरपेक्षीकरण, सामाजिक गतिशीलता और आधुनिक राज्य, और यह कि वे विशुद्ध रूप से आधुनिक घटनाएँ हैं। आदिमवादी धारणा के खिलाफ कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद स्वाभाविक और प्राकृतिक है, आधुनिकतावादी, जैसे अर्नेस्ट गेलनर, बेनेडिक्ट एंडरसन, एरिक हॉब्सबॉम, टॉम नायर, माइकल हेचटर, जॉन ब्रेइली और पॉल ब्रास, तर्क देते हैं कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद निर्मित घटनाएं हैं और इसलिए वे नृजातीयता की सभी अभिव्यक्तियों से ऐतिहासिक और वैचारिक रूप से अलग होना चाहिए।

अंत में, हमारे पास नृजातीय–प्रतीकवाद है, एक दृष्टिकोण जो आदिमवाद और आधुनिकतावाद की आलोचना के रूप में उभरा है। इसका केंद्रीय फोकस राष्ट्रों और राष्ट्रवाद के निर्माण में प्रतीकों, यादों, मूल्यों और मिथकों की स्वतंत्र भूमिका पर है। एंथोनी स्मिथ और जॉन आर्मस्ट्रांग जैसे नृजातीय–प्रतीकवादी, पूर्व–आधुनिक नृजातीय तत्वों पर आधुनिकीकरण के परिवर्तनकारी प्रभाव और राज्य के लिए उनके राजनीतिक निहितार्थ को स्वीकार करते हैं। हालांकि वे आधुनिकतावादियों के विपरीत तर्क देते हैं कि पूर्व–आधुनिक नृजातीय तत्व राष्ट्र और राज्य–निर्माण को गहराई से आकार देते हैं। आदिमवादियों की तरह, नृजातीय–प्रतीकवादियों का मानना है कि पूर्व–आधुनिक नृजातीय पहचान राष्ट्रों और राष्ट्रवाद के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हालाँकि, आदिमवादियों के विपरीत, उनका तर्क है कि नृजातीय पहचान, राष्ट्र और राष्ट्रवाद प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और ऐतिहासिक हैं, और पूर्व–आधुनिक नृजातीय पहचान आधुनिकीकरण को उतना ही आकार पाते हैं जितना कि वे आधुनिकीकरण द्वारा आकार देते हैं। नृजातीय–प्रतीकवाद, इस प्रकार, आदिमवाद और आधुनिकतावाद के बीच एक मध्य आधार रखता है, यह दावा करते हुए कि राष्ट्र और राष्ट्रवाद आधुनिक घटनाएँ हैं, वे पूर्व–आधुनिक नृजातीय पहचान और तत्वों के आधार पर विकसित होते हैं।

10.6 एक राष्ट्र–राज्य को बहुलवाद की आवश्यकता क्यों है?

जबकि राष्ट्रवाद आधुनिक राज्य की एकता और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, राष्ट्रवाद अपनी प्रकृति से समरूप है और इसलिए इसे सुनिश्चित करने में समस्या हो सकती है। माइकल इग्नाटिफ़ का तर्क है कि राष्ट्रवाद एक प्रकार की सामूहिक पहचान है जो अनिवार्य रूप से स्वयं को अधिक महत्व देती है और ऐसी ही अन्य पहचानों का अवमूल्यन करती है (जैसा कि हर्न, 2006, पृष्ठ 238 में उद्धृत किया गया है)। जूडिथ लिचटेनबर्ग (1997) का तर्क है कि साथी नागरिकों और उनके साझा जीवन के प्रति पक्षपात के परिणामस्वरूप नृजातीय समूहों के बीच मूल्यों और हितों का टकराव हो सकता है जिसे राज्य का सामान्य राजनीतिक ढांचा हल करने में विफल रहता है।

चार्ल्स टेलर (1999) का तर्क है कि राष्ट्रवाद व्यक्तियों को एक आधुनिक पहचान प्रदान करता है जो उन्हें समान नागरिक के रूप में अपने आत्म–मूल्य और गरिमा का एहसास करने में मदद करता है। चूंकि सार्वजनिक क्षेत्र में अल्पसंख्यकों की नृजातीय या राष्ट्रवादी पहचान हाशिए पर है, इसका परिणाम ऐसे समुदायों को उन दावों से बाहर करना है जिनका वादा राष्ट्रवाद की आधुनिक पहचान करते हैं। अल्पसंख्यकों की कुंठित राष्ट्रवादी

पहचान के परिणामस्वरूप नृजातीय राष्ट्रवाद के अनुदार रूप हो सकते हैं, जैसे कि पूर्व यूगोस्लाविया में।

नृजातीय समूहों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक हैंः सबसे पहले, अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक जागरूकता का स्तर और दूसरी बात, बहुसंख्यकों द्वारा अपने समूह की पहचान के लिए खतरे की भयावहता के बारे में अल्पसंख्यक की धारणा (कॉनर, 2000, पृष्ठ 49)। राष्ट्रीय पहचान का सार मनोवैज्ञानिक है और इसमें आत्म–पहचान शामिल है; इसे अल्पसंख्यकों पर थोपा नहीं जा सकता, लेकिन इसे स्वीकार्य और आकर्षक बनाया जाना चाहिए। समावेशीकरण करना एक धीमी प्रक्रिया है और इसमें सदियां लग सकती हैं। इसलिए, विविधता का समायोजन स्थिरता सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है और जैसा कि भारतीय नीति निर्माताओं ने 'विविधता में एकता' कहा है। लोग 'नफरत समूह विशेषताओं' के वाहक के बजाय दूसरों को व्यक्तियों के रूप में देखकर सहिष्णुता सीख सकते हैं। मौरिज़ियो विरोली (1995) का मानना है कि देशभक्ति को राजनीतिक संस्थानों के प्यार के रूप में समझा जाता है और जीवन के तरीके को राष्ट्रवाद के विपरीत समझा जाता है, जिसे लोगों की एकरूपता के रूप में समझा जाता है, जो दुर्भावनापूर्ण राष्ट्रवाद का इलाज हो सकता है। आधुनिक राज्य की वैधता सभी नागरिकों की सामान्य भलाई सुनिश्चित करने और सामाजिक रूप से विविध आवश्यकताओं को पूरा करने में निहित है। विविधता को दबाने के बजाय समायोजन करने से ही आधुनिक राज्य को व्यापक समर्थन प्राप्त होता है।

कई राज्यों ने अपनी–अपनी विविधता को अपनी ताकत के बारे में एक विवरण बनाया है। उदाहरण के लिए, कनाडा ने बहुलवाद को अपनी राष्ट्रीयता का एक अनिवार्य घटक बना लिया है। इसने अपनी विविधता को मान्यता देने के आधार पर एक विशिष्ट राष्ट्रीय पहचान बनाई है। इसने बहुलवादी नीतियों को अपनाया है। कई राष्ट्र–राज्यों ने अपनी राष्ट्रीय पहचान को फिर से परिभाषित किया है जो विभिन्न समूहों के हितों को समायोजित करती है। इस बहुलवादी दृष्टिकोण के दो लाभ हैं। सबसे पहले, यह विभिन्न समूहों के अभिजात वर्ग और जनता को एकजुट करता है। दूसरे, यह नृजातीय अल्पसंख्यक समूहों का राजनीतिकरण करता है; अल्पसंख्यक समूहों को लगता है कि वे बहुलवादी राष्ट्र–राज्य का हिस्सा हैं (विंटर, 2007)। इस प्रकार स्विट्ज़रलैंड अपनी भाषाई रूप से विभाजित आबादी के बीच एकजुट राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त करने में सक्षम रहा है।

दूसरी ओर, ऐसे राज्य हैं जहां राज्य के अभिजात वर्ग अपने नृजातीय समूह के सदस्यों के पक्ष में नृजातीय, धार्मिक या क्षेत्रीय भेदभाव करते हैं। इसका परिणाम नृजातीय मतभेदों के राजनीतिकरण और नृजातीय लोकतंत्र के निर्माण या 'नौकरशाही के नृजातीयकरण' (विमर, 2002, पृष्ठ 66) में होता है। विमर इस नृजातीय राजनीति के दो कारण सुझाते हैं। सबसे पहले, संसाधनों की कमी हो सकती है, जो राज्य के अभिजात वर्ग को समाज के सभी वर्गों के समावेशी एकीकरण से रोकता है। दूसरे, राज्य का गठन एक लोकतांत्रिक नागरिक समाज की स्थापना से पहले हो सकता है; इस प्रकार, राजनीतिक नेटवर्क के आधार पर राज्य अभिजात वर्ग का कार्य अक्सर नृजातीय आधार पर संरचित होता है। हम अक्सर औपनिवेशिक राज्यों जैसे रवांडा, इथियोपिया, सूडान और इज़राइल जैसे अन्य राज्यों में राष्ट्रीय राजनीति के ऐसे नृजातीयकरण को देखते हैं।

नृजातीय पहचान का राजनीतिकरण जरूरी नहीं कि हिंसक संघर्ष की ओर ले जाए। लोकतांत्रिक राज्यों में, नृजातीय समूहों के बीच बातचीत के परिणामस्वरूप बहुलवादी अर्थ में राष्ट्रीय पहचान को फिर से परिभाषित किया जा सकता है। यहां प्रमुख समूह यह महसूस करता है कि यह अन्य नृजातीय समूहों में से एक है जो राज्य को साझा करता है। दूसरे शब्दों में, बहुसंख्यक बहुलवाद को स्वयं नहीं अपनाते हैं। अपनी स्वयं की बहुसंख्यक इच्छा अल्पसंख्यकों को शायद ही कभी समान दर्जा देती है। अल्पसंख्यकों को अपने अधिकारों का दावा करना चाहिए और उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए। बहुलवाद की मांग

करने वाले अल्पसंख्यकों के पास अपने दावों को दांव पर लगाने के लिए पर्याप्त लाभ होना चाहिए। इस प्रकार, एक बहुलवादी राज्य सत्ता संबंधों से मुक्त नहीं है (विंटर, 2007)। यह अल्पसंख्यकों की मांगों को रोकने और अल्पसंख्यकों को रियायतें देने के बीच संतुलन बनाए रखता है। राष्ट्रीय पहचान को परिभाषित करने के लिए लगातार बातचीत और फिर से बातचीत चलती है (विंटर, 2007, पृष्ठ 503)। बहुलवाद ऐसी वार्ताओं के लिए स्थान प्रदान करता है। बहुलवाद का मानना है कि एक अच्छा जीवन जीने के विभिन्न तरीके हैं और इसलिए, विभिन्न संस्कृतियों के लिए एक दूसरे से सीखने की क्षमता है। बहुलवाद विविधता को पोषित करता है। यह उन नृजातीय बहिष्करणों को दूर करने का प्रयास करता है जो आधुनिक राष्ट्रवादी विमर्श के अंतर्निहित हैं। जिस तंत्र के माध्यम से बहुलवाद लागू किया जाता है वह बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों के बीच शक्ति संबंधों और बातचीत पर निर्भर करता है।

10.7 अल्पसंख्यक और राष्ट्र–राज्य

एक राष्ट्र–राज्य के भीतर विभिन्न प्रकार के अल्पसंख्यक होते हैं। राष्ट्र–राज्य के सदस्यों के रूप में उनके इतिहास में अंतर विभिन्न दावों और मांगों को जन्म देता है। किमलिका ने अल्पसंख्यकों को दो व्यापक समूहों में वर्गीकृत किया है। सबसे पहले राष्ट्रीय अल्पसंख्यक हैं जिन्होंने राष्ट्र–राज्य की स्थापना के बाद से देश के भीतर क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है। ये ऐतिहासिक समुदाय हैं जो स्वशासी हैं और जिनकी एक अलग भाषा और संस्कृति है (किमलिका, 1995)। वे मुख्यधारा की संस्कृति के साथ अलग समाज के रूप में रहना चाहते हैं और स्वायत्तता और स्वशासन की इच्छा रखते हैं। ऐसे मामलों में, एक राज्य के भीतर एक से अधिक राष्ट्रों का सह–अस्तित्व होता है। ऐसे राज्य बहु–राष्ट्र राज्य हैं, राष्ट्र–राज्य नहीं। एक राज्य के भीतर विभिन्न राष्ट्रों की उपस्थिति अनैच्छिक हो सकती है जो आक्रमण के माध्यम से होती है, या स्वैच्छिक हो सकती है जब वे आपसी समझौते के माध्यम से एक संघ बनाते हैं। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक भूमि, क्षेत्रीय स्वायत्तता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और राष्ट्रीय प्रतीकों पर अधिकारों का दावा करते हैं।

अल्पसंख्यकों की दूसरी श्रेणी उन अप्रवासियों की है जो हाल ही में अन्य राष्ट्र–राज्य में चले गए हैं। वे राज्य में एकीकृत होने और समाज के पूर्ण सदस्यों के रूप में स्वीकार किए जाने की इच्छा रखते हैं। वे अपनी नृजातीय पहचान की मान्यता और मुख्यधारा के समाज के कानूनों और संस्थानों में संशोधन की मांग करते हैं। जबकि वे अपने सांस्कृतिक मतभेदों के लिए सामंजस्य चाहते हैं, वे एक अलग या स्वशासी राष्ट्र बनने का लक्ष्य नहीं रखते हैं। अप्रवासी समूह 'राष्ट्र' नहीं हैं और राज्य में उनकी कोई मातृभूमि नहीं है। वे प्रमुख संस्कृति की मुख्यधारा की सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। वे प्रमुख भाषा भी बोलते हैं। सामान्य तौर पर, अप्रवासी समुदायों की मांगें शिक्षा पाठ्यक्रम और सांस्कृतिक प्रथाओं जैसे विषयों पर केंद्रित होती हैं।

किमलिका का तर्क है कि मतभेदों को समायोजित करने के लिए, एक तरीका सभी व्यक्तियों के लिए नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का प्रावधान है। हालांकि, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के सामंजस्य के लिए, किमलिका आम नागरिकता अधिकारों और व्यक्तिगत अधिकारों से परे जाने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते है; इसके लिए समूह–विशिष्ट अधिकारों या सामुदायिक अधिकारों की आवश्यकता होती है। वह समूह–विशिष्ट अधिकारों का प्रस्ताव करता है जैसे कि स्वशासन का अधिकार और विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार (किमलिका, 1995)। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक अपनी संस्कृति के मुक्त विकास को सुनिश्चित करने के लिए राजनीतिक स्वायत्तता और क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र की मांग करते हैं और इसके हकदार हैं। छोटे राष्ट्रवादी समूहों की अलगाववादी मांगों से बचने के लिए राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को स्वशासन के अधिकार प्रदान करने होंगे। स्व–शासन अधिकार प्रदान

करने के तरीकों में से एक संघवाद है जो केंद्र सरकार और क्षेत्रीय उप–इकाइयों की शक्तियों को अलग करता है। यह राष्ट्रीय अल्पसंख्यक को बहुसंख्यकों द्वारा दबाने से बचाता है। हालांकि, एक बड़ी चुनौती विषम संघवाद का स्वीकार्य रूप खोजना है।

10.8 बहुलवाद को क्रियान्वित करने की क्रियाविधि

राष्ट्र–राज्यों को नृजातीय–सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के समूह–विशिष्ट अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए, अर्थात उनके जीवन के तरीके का सम्मान और रक्षा करनी चाहिए। विविधता को समायोजित करना और अल्पसंख्यकों की हाशिए पर पड़ी संस्कृतियों के अस्तित्व को सुनिश्चित करना कई कठिनाइयाँ पैदा करता है क्योंकि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदायों के बीच मतभेद और असहमति हैं। इन सवालों के नैतिक और राजनीतिक जवाब खोजना राष्ट्र–राज्यों के लिए परीक्षा साबित हुआ है। राज्यों को यह परिभाषित करने की आवश्यकता है कि 'विविधता की जायज सीमा' क्या है और अल्पसंख्यक समुदायों के साथ उचित व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए एक तंत्र विकसित करना चाहिए (पारेख, 1994)। अल्पसंख्यकों की समानता की मांग और अपनी पहचान बनाए रखने की इच्छा कभी–कभी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में राज्य के लिए मुश्किलें खड़ी करती है। आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र–राज्य की स्थिरता और वैधता के लिए अल्पसंख्यकों की मांगों और राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

विभिन्न विद्वानों ने एक बहु–नृजातीय राज्य के भीतर नृजातीय आकांक्षाओं को संतुष्ट करने और राज्य द्वारा नृजातीय संघर्षों के प्रभावी प्रबंधन के तरीकों का पता लगाया है। जॉन मैकगैरी और ब्रेंडन ओ'लेरी (1993) ने नृजातीय संघर्ष की समस्या को सुधारने के तरीके सुझाएः (i) क्षेत्रीय अलगाव के मामलों में स्वशासन, (ii) बहुमत समूह सुरक्षित है और अल्पसंख्यकों से नहीं डरता है, (iii) जनसांख्यिकीय स्थिरता जहां एक समूह दूसरे से आगे नहीं बढ़ रहा है, और (iv)नृजातीय राजनीतिक अभिजात वर्ग के बीच सहयोग का इतिहास। मैकगैरी और ओ'लेरी का तर्क है कि अत्यधिक नृजातीय हिंसा के मामलों में, अलगाव समाधान हो सकता है क्योंकि यह आत्मनिर्णय के लोकतांत्रिक सिद्धांत के अनुरूप है। इन मामलों में संप्रभुता हासिल करना एक समूह की भलाई की रक्षा करने का एकमात्र तरीका हो सकता है। यह विशेष रूप से प्रासंगिक है जिसे सैमी स्मूहा (2002) 'नृजातीय लोकतंत्र' या 'अपूर्ण लोकतंत्र' कहते हैं, जैसे कि इज़राइल जहां बहुसंख्यक समूह राजनीतिक शासन के माध्यम से समाज पर हावी है।

अरेंड लिजफर्ट (1991) ने नीदरलैंड, बेल्जियम, ऑस्ट्रिया और स्विटजरलैंड में सत्ता–साझाकरण व्यवस्था के उदाहरण दिए हैं, जिसमें सफल मॉडल के रूप में नृजातीय / राष्ट्रीय समूह राज्य की शक्ति साझा करते हैं, स्वायत्तता रखते हैं, महत्वपूर्ण मुद्दों पर वीटो पावर, संसद में प्रतिनिधित्व करते हैं और सामाजिक वस्तुओं तक पहुंच रखते हैं। माइकल हेक्टर (2000) एक संघीय प्रणाली का सुझाव देते हैं जो राष्ट्रवादी संघर्ष के समाधान के रूप में केन्द्राभिमुख और केन्द्रापसारक प्रवृत्तियों के बीच संतुलन बना सकती है। हालाँकि, 'एथनो–फेडरल' सिस्टम जैसे कि यूगोस्लाविया में नृजातीय पहचान को मजबूत और राजनीतिक बना सकता है। विभिन्न नृजातीय समूहों के राजनीतिक अभिजात वर्ग द्वारा गुटबाजी और दुरुपयोग को मजबूत करने के लिए प्रवृत्त होने के लिए ऐसी नीतियों की आलोचना की गई है। दूसरी ओर, स्थिरता और एकता के नाम पर राज्य द्वारा अल्पसंख्यकों का राजनीतिक दमन उचित भी नहीं है।

10.9 बहुलवाद के संचालन में चुनौतियां

अपने सभी समुदायों के लिए समान व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्र–राज्य की क्षमता सीमित है (पारेख, 1997)। एक राष्ट्र–राज्य की एक विशिष्ट पहचान होती है जो लंबे समय तक हासिल की जाती है जो उसके जीवन के तरीके का निर्माण करती है। इसलिए, एक राष्ट्र–राज्य स्वाभाविक रूप से जीवन के एक विशेष तरीके से आंशिक होता है और इसमें एक सांस्कृतिक पूर्वाग्रह होता है (पारेख, 1997)। उदाहरण के लिए, मुस्लिम पश्चिमी समाजों में वंचित हैं क्योंकि शुक्रवार कार्य दिवस हैं; मुस्लिम देशों में ईसाइयों को नुकसान का सामना करना पड़ता है क्योंकि रविवार कार्य दिवस होते हैं। इसके अलावा, एक सांस्कृतिक रूप से विषम राष्ट्र–राज्य में गहरे अंतर की एक विस्तृत श्रृंखला होती है; यह सभी मतभेदों के प्रति समान रूप से सहिष्णु और सहानुभूति रखने में असमर्थ है। अल्पसंख्यक संस्कृतियों के बारे में इसकी समझ सीमित है और इसलिए यह सभी मतभेदों को समायोजित करने के लिए अपनी मान्यताओं और प्रथाओं को लगातार बदलने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि कोई भी राष्ट्र–राज्य अपने सभी सांस्कृतिक समुदायों के लिए पूर्ण समानता की गारंटी नहीं दे सकता है; लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एक राष्ट्र–राज्य को इस आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। समान व्यवहार संभव नहीं हो सकता, लेकिन उचित व्यवहार संभव है। एक राष्ट्र–राज्य को न केवल अपने अतीत के प्रति संवेदनशील होना चाहिए, बल्कि अपने वर्तमान के प्रति भी, अपने बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों समुदायों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए और समानता के दावों को अपनी ऐतिहासिक निरंतरता के साथ समेटना चाहिए (पारेख, 1997)।

बहुलवाद का संचालन और संस्थागतकरण कुछ चुनौतियों का सामना करता है। पारेख ने जोर देकर कहा कि समानता के लिए राष्ट्र–राज्य द्वारा प्रासंगिक मतभेदों की मान्यता की आवश्यकता होती है, जबकि अप्रासंगिक मतभेदों को खारिज किया जा सकता है। यह एक समस्यात्मक दावा है क्योंकि क्या प्रासंगिक है और क्या अप्रासंगिक है इसका निर्णय बहुसंख्यकवादी पूर्वाग्रह की ओर जाता है। पारेख का तर्क है कि एक उदार राष्ट्र–राज्य को अल्पसंख्यकों की उन सांस्कृतिक प्रथाओं को सहन करने की आवश्यकता नहीं है जो उन मूलभूत मूल्यों का उल्लंघन करते हैं जो एक उदार समाज कायम रखता है और जिसके लिए खड़ा वह प्रतिबद्ध है। साथ ही, अल्पसंख्यक समुदाय को उदार समाज के उन मूल्यों और प्रथाओं से विदा लेने की अनुमति दी जानी चाहिए जिनकी नैतिक रूप से श्रेष्ठ स्थिति नहीं है। अल्पसंख्यक समुदाय की आवश्यक प्रथाओं को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। इसके लिए सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और वस्तुनिष्ठ परीक्षण की आवश्यकता है जो एक आवश्यक अभ्यास का गठन करता है। इसके लिए प्रश्न पूछने की आवश्यकता होती है जैसे कि एक समूह को प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए क्या चाहिए, एक विशेष सांस्कृतिक परंपरा कितनी महत्वपूर्ण है, और क्या इसे समुदाय की पहचान को नष्ट किए बिना संशोधित किया जा सकता है। पारेख समानता के लिए एक प्रासंगिक और ऐतिहासिक रूप से संवेदनशील दृष्टिकोण और ऐसे जटिल मुद्दों पर चर्चा करने के लिए विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व करने वाले सार्वजनिक मंचों के निर्माण का सुझाव देते हैं। उदार राष्ट्र–राज्यों में बहस छिड़ने वाली कुछ प्रथाएं बहुविवाह, तलाक की प्रथा, व्यवस्थित विवाह, पहले चचेरे भाई और चाचा और भतीजी जैसे निषिद्ध संबंधों के बीच विवाह, मुस्लिम लड़कियों की हेडड्रेस पहनने की मांग, हिंदू प्रथा द्वारा जल निकायों में मृतकों की राख डालना, पगड़ी पहनने और औपचारिक तलवारें ले जाने की सिख मांग, छोटे कपड़ों की आवश्यकता वाले खेलों से मुस्लिम लड़कियों को वापस लेना, और यहूदी शनिवार के बजाय रविवार को व्यापार करने की मांग करते हैं।

10.10 भारत में बहुलवाद

भारतीय समाज धर्म, संस्कृति और रहन–सहन के मामले में बहुत विविध है। एक नवजात अवस्था में स्थिरता और एकता बनाए रखने के लिए, भारत के राजनीतिक नेताओं ने 'विविधता में एकता' की उक्ति को बढ़ावा दिया, जिसका अर्थ है कि भारतीय समाज में एक अंतर्निहित एकता मौजूद है जो धर्म, संस्कृति, नस्ल और भाषा के मतभेदों को पार करती है। जहाँ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के उदाहरण भारत के इतिहास में पाए जा सकते हैं, वहाँ संघर्ष, शत्रुता और हिंसा के भी उदाहरण हैं। औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने के साझा लक्ष्य के साथ राष्ट्रीय आंदोलन ने विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों के लोगों को एक साथ लाया। हालाँकि, यह एकता नाजुक थी और भारतीय समाज में केन्द्रापसारक प्रवृत्तियों का उदय हुआ। द्वि–राष्ट्र सिद्धांत, मुसलमानों के लिए एक अलग मातृभूमि की मांग और देश के विभाजन ने दिखाया कि एक विविध समाज के संदर्भ में एकता को हल्के में नहीं लिया जा सकता है।एकता को निरंतर पोषित करना दे और उसके लिए लगातार कार्य करना है।

लोगों में एकता और बंधुत्व पैदा करने के लिए, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद और श्री अरबिंदो जैसे नेताओं ने भारत में आध्यात्मिक एकता पर जोर दिया (महाजन, 2019)। उदाहरण के लिए, महात्मा गांधी ने इस बात पर जोर दिया कि एक ही सत्य तक पहुंचने के लिए विभिन्न धर्म के अलग–अलग मार्ग हैं। नेताओं ने आपसी सम्मान, मतभेदों को सहन करने, शांति से रहने और विचारों के मुक्त आदान–प्रदान के लिए तर्क दिए। इन मूल्यों को विभिन्न मौलिक अधिकारों के रूप में भारत के संविधान में शामिल किया गया है।

बोध प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) इस इकाई के अंत में दिए गए मॉडल उत्तर से अपने उत्तर की जाँच करें।

1) किमलिका ने किन दो प्रकार के अल्पसंख्यकों की पहचान की है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) बहुलवाद को क्रियान्वित करने के दो व्यापक रूप से स्वीकृत तरीके क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.11 सारांश

यह धारणा सही साबित नहीं हुई है कि आधुनिक राष्ट्र–राज्यों में आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नृजातीय पहचान का महत्व खत्म हो जाएगा। शीत युद्ध के बाद के युग में नृजातीय समुदाय न केवल जीवित रहे हैं बल्कि पहचान की राजनीति की प्रकृति को बदलने के लिए विकसित हुए हैं। जबकि कुछ बहु–नृजातीय राज्य अपेक्षाकृत अधिक एकीकृत हैं, कुछ अलगाववादी आंदोलनों और अलगाववादी मांगों से जूझ रहे हैं। कई कारक नृजातीय समूहों को राष्ट्रवादी अलगाववादी समूहों में बदल सकते हैं जो सामान्यीकरण को कठिन बना देते हैं। राष्ट्रीय चेतना के निर्माण का प्रत्येक राज्य का अपना अनुभव है। संचालन में बहुलवाद और राष्ट्रवाद इसके संदर्भ पर निर्भर हैं। कुछ विद्वान इस सवाल को उठाते हैं कि क्या बहुलवादी नीतियां राष्ट्र–राज्य के विचार के लिए खतरा हैं। हालाँकि, कनाडा, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे राज्यों में बहुलवादी प्रवचनों और नीतियों के विकास को राष्ट्र–निर्माण के एक नए चरण के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें राष्ट्रीय पहचान को सामाजिक परिवर्तनों का जवाब देने के लिए पुनर्परिभाषित किया जाता है, न कि इसे एक खतरे के रूप में देखने के लिए।

10.12 शब्दावली

राष्ट्रः एक राष्ट्र "एक नामित मानव आबादी है जो एक ऐतिहासिक क्षेत्र, आम मिथकों और ऐतिहासिक यादों, एक सामूहिक सार्वजनिक संस्कृति, एक आम अर्थव्यवस्था और सभी सदस्यों के लिए सामान्य कानूनी अधिकार और कर्तव्यों को साझा करता है" (एंथनी स्मिथ)। एक राष्ट्र "ऐतिहासिक आकस्मिकताओं से निर्मित सामाजिक एकजुटता का एक संयोजन है जो वर्तमान में उस एकजुटता पर निर्माण जारी रखने के लिए एक स्वैच्छिक सामूहिक इच्छा के साथ है" (अर्नेस्ट रेनन)।

राज्यः राज्य एक कानूनी अवधारणा है जो एक सामाजिक समूह का वर्णन करता है जो एक परिभाषित क्षेत्र पर कब्जा करता है और सामान्य राजनीतिक संस्थानों और रीति–रिवाजों और एकरूपता की भावना के तहत संगठित होता है।

अल्पसंख्यकः एक अल्पसंख्यक "सांस्कृतिक, नृजातीय या नस्लीय रूप से अलग समूह है जो सह–अस्तित्व में है लेकिन एक अधिक प्रभावशाली समूह के अधीन है" (पारेख)। एक अल्पसंख्यक "एक गैर–प्रमुख स्थिति में राज्य की बाकी आबादी से संख्यात्मक रूप से हीन एक समूह है, जिसके सदस्य– राज्य के नागरिक होने के नाते–नृजातीय, धार्मिक या भाषाई विशेषताओं में बाकी आबादी से भिन्न होते हैं। और अपनी संस्कृति, परंपरा, धर्म या भाषा को संरक्षित करने की दिशा में निर्देशित एकजुटता की भावना, यदि केवल परोक्ष रूप से दिखाते हैं" (कैपोटोर्टी)।

10.13 संदर्भ

कॉनर, डब्ल्यू. (2000).नेशन बिल्डिंग और नेशन डिस्ट्रोसिंग. जे. हचिंसन और ए. स्मिथ में, नेशनलिज्मः क्रिटिकल कन्सेप्टस इन पालिटिक्ल साईस. लंदनः रूटलेज.

ग्रोस्बी, एस. (2005).नेशनलिज्म : ए वेरी शार्ट इंटरोडक्शन. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

गुइबर्नो, एम. (1996).नेशनलिजम्स : द नेशन स्टेट एंड नेशनलिज्म इन 20वीं सेंचूरी. कैम्ब्रिजः पॉलिटी प्रेस.

हर्न, जे. (2006). रीथिंकिंग नेशनलिज्मः ए क्रिटिकल इंट्रोडक्शन. पालग्रेव मैकमिलन.

केलास, जे. जी. (1998).द पालिटिक्स ऑफ नेशनलिज्म एंड एथनिसिटी (दूसरा संस्करण). बेसिंगस्टोकः मैकमिलन.

किमलिका, डब्ल्यू. (1995). म्ल्टीकल्चरल सिटिजनशिप. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

पारेख, बी. (1994).इक्वेलिटी, फेयरनेस एंड लिमिटस ऑफ डाइवरसिटी. नवाचार, 7(3).

पारेख, बी. (1997). इक्वेलिटी इन मल्टीकल्चरल सोसाइटी. जे. फ्रैंकलिन (एड.) में, इक्वेलिटी. लंदनः इंस्टिट्यूट फॉर पब्लिक पॉलिसी रिसर्च.

टेलर, सी. (1999).डेमोक्रेटिक एवसकलूजन (एंड इटस रेमेडिज) ए. सी. केर्न्स और ई. अल (सं.), सिटिजनशिप, डाइवरसिटी एंड प्लूरलिज्म. मैकगिल–क्वीन यूनिवर्सिटी प्रेस.

विंसेंट, ए. (2010).मार्डन पालिटिकल आइडियोलोजिस (तीसरा संस्करण). ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल.

विमर, ए (2002).नेशनलिस्ट एक्सकलूजन एंड स्थनिक कोन्फलिक्ट : शेडोज आफ माडरनिटी. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

विंटर, ई. (2007).हाऊ इज नेशन बिकम प्लूरलिस्ट एथनिसिटीज 7 (4)

वेबर, एम. (1994). द नेशन. जे. हचिंसन और ए.डी. स्मिथ (सं.), नेशनलिज्म. ऑक्सफोर्ड और न्यूयॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

10.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) राज्य एक कानूनी अवधारणा है जो एक सामाजिक समूह का वर्णन करता है जो एक परिभाषित क्षेत्र पर कब्जा करता है और सामान्य राजनीतिक संस्थानों के तहत संगठित होता है। दूसरी ओर, राष्ट्र एक भावुक या सांस्कृतिक रूप से उन्मुख संबंध का प्रतिनिधित्व करता है।

2) परिवहन और संचार में सुधार के कारण अंतर–नृजातीय और अंतरा–नृजातीय बातचीत ने नृजातीय चेतना और संघर्ष पैदा किया है।

बोध प्रश्न 2

1) किमलिका ने उन अल्पसंख्यकों की पहचान की जिन्होंने देश के भीतर क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है और मुख्यधारा के साथ अलग समाज के रूप में रहने की इच्छा रखते हैं और जो हाल ही में अन्य राष्ट्र में चले गए हैं और मेजबान राज्य उनकी से मामूली मांगें हैं।

2) सत्ता के बंटवारे की व्यवस्था और संघीय व्यवस्था को अपनाना।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY